INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

BAHIN202
सामान्य हिंदी-दो (II)

BA (HINDI)

4TH SEMESTER

Rajiv Gandhi University
www.ide.rgu.ac.in

सामान्य हिंदी –दो (II)

बी.ए. (हिंदी)

(चतुर्थ सत्र)

MAHIN-202

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Urvija Sharma , Dr. Seema Sharma, Dr. Ashutosh Kumar Mishra & Dr. Amrendra Tripathi

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय .मी . राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमएड का कोर्स .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .फिल व पी . भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने-1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र | परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं NET

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक - बाधाओं को दूर करने का यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी भारत के दूरस्थ - स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान (आईटीई) रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)** कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों हालांकि व्यावसायिक .ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य .पाठ्यक्रमों और के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

'सामान्य हिंदी-दो (II)

Syllabi- BAHIN-202	Mapping in Book
इकाई : 1 आधुनिक्कालीन काव्य; भारतेंदु युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां; द्विवेदी युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां; छायावाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां; प्रगतिवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां; प्रयोगवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां; स्वतंत्रयोत्तर कविता : परिचय तथा प्रवृत्तियां; सारांश	**इकाई 1 : हिंदी साहित्य का इतिहास – II**
इकाई 2 : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : सामान्य परिचय; पाठ्य कविताएँ ; आलोचना – छायावाद और निराला ; निराला काव्य में प्रगति और विद्रोह के स्वर; महादेवी वर्मा : सामान्य परिचय; पाठ्य कविताएँ ; आलोचना – विरह वेदना; छायावादी तत्व ; सारांश	**इकाई 2 : छायावादी कवि – II**
इकाई : 3 मुक्तिबोध : सामान्य परिचय; पाठ्य कविताएँ ; आलोचना – मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताएं ; सर्वेश्वरदयाल सक्सेना सारांश : सामान्य परिचय; पाठ्य कविताएँ ; आलोचना – सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य सौष्ठव; सारांश	**इकाई 3 : आधुनिक कवि – II**
इकाई : 4 संक्षेपण; पल्लवन; टिप्पण ; सारांश	**इकाई 4 : व्यावहारिक हिंदी – II**
इकाई : 5 पारिभाषिक शब्दावली : : सामान्य परिचय; पारिभाषिक शब्दावली : अर्थ एवं परिभाषा ; पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएं ; पारिभाषिक शब्दों के प्रकार ; चुने हुए 150 पारिभ्शिक शब्द ; सारांश	**इकाई 5 : अनुवाद – II**

विषय-सूची

परिचय

इकाई 1 : हिंदी साहित्य का इतिहास – II

1.1 आधुनिक्कालीन काव्य

1.2 भारतेंदु युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.3 द्विवेदी युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.4 छायावाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.5 प्रगतिवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.6 प्रयोगवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.7 स्वतंत्रयोत्तर कविता : परिचय तथा प्रवृत्तियां

1.8 सारांश

इकाई 2 : छायावादी कवि – II

2.1 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : सामान्य परिचय

2.1.1 पाठ्य कविताएँ

2.1.2 आलोचना – छायावाद और निराला

2.1.3 निराला काव्य में प्रगति और विद्रोह के स्वर

2.2 महादेवी वर्मा : सामान्य परिचय

2.2.1 पाठ्य कविताएँ

2.2.2 आलोचना – विरह वेदना

2.2.3 छायावादी तत्व

2.3 सारांश

इकाई 3 : आधुनिक कवि – II

3.1 मुक्तिबोध : सामान्य परिचय

3.1.1 पाठ्य कविताएँ

3.1.2 आलोचना – मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताएं

3.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना सारांश : सामान्य परिचय

3.2.1 पाठ्य कविताएँ

3.2.2 आलोचना –सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य सौष्ठव

3.3 सारांश

इकाई 4 : व्यावहारिक हिंदी – II

4.1 संक्षेपण

4.2 पल्लवन

4.3 टिप्पण

4.4 सारांश

इकाई 5 : अनुवाद – II

5.1 पारिभाषिक शब्दावली : : सामान्य परिचय

5.2 पारिभाषिक शब्दावली : अर्थ एवं परिभाषा

5.3 पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएं

5.4 पारिभाषिक शब्दों के प्रकार

5.5 चुने हुए 150 पारिभ्शिक शब्द

5.6 सारांश

इकाई 1 हिंदी साहित्य का इतिहास –II

1.1

1.3 आधुनिककालीन काव्य

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है, किंतु इस काल में आधुनिक हिन्दी कविता बहुमुखी होकर विकसित हुई और इसी काल के द्वितीय चरण में आकर कविता में भाषाई क्रांति आई। अब कविता खड़ी बोली हिन्दी में रची जाने लगी। इस प्रकार हिन्दी में पहली बार आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार से हुआ।

यहां आधुनिक काल के 'आधुनिक' शब्द को लेकर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। साहित्य के संदर्भ में तथा इतिहास के संदर्भ में इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है। एक तो आदिकाल तथा मध्यकाल से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टि की सूचना देने वाली सभी गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में और दूसरे लौकिक, सामाजिक एवं सांसारिक दृष्टिकोण के बदलते, संवरते परिप्रेक्ष्य में। रीतिकाल में श्रृंगारिकता, ऊहात्मकता, रूढ़िवादिता तथा शास्त्रीयता से समृद्ध एक विशेष प्रकार के साहित्य ने एकरसता और अरुचि पैदा कर दी थी। तत्पश्चात नवीन ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई और आधुनिक गत्यात्मकता का संचार होने लगा। यह आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण कला और साहित्य में भी इसीलिए अभिव्यक्त हुआ क्योंकि इस युग में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में इसका प्रादुर्भाव हो रहा था।

रीतिकाल के उत्कर्ष के बाद जिस नए युग का आगमन हो रहा था, उसके संकेत अंग्रेज़ों की नई आर्थिक नीति, औद्योगिक क्रांति, संचार व्यवस्था तथा मुद्रणालयों के प्रचार–प्रसार से मिलने लगते हैं। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता का अनुभव करने लगा था। परंपराएं टूट रही थीं, रूढ़ियों और पाखंडों का विरोध हो रहा था। सामाजिक जीवन शैली में नवीनता दिखाई दे रही थी। इन बदलती परिस्थितियों ने ही पुनर्जागरण को जन्म दिया।

धार्मिक दृष्टि से भी परिवर्तन हो रहा था। अंग्रेजों के आक्रामक रुख की परिभाषा बदल रही थी, धर्म इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन गया था। लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा। धर्मसुधारकों ने भी धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। दयानंद सरस्वती एवं राममोहन राय जैसे समाजसुधारकों ने तर्क और प्रमाण के आधार पर समाज सुधार कर कुरीतियों के निवारण का प्रयास किया। परिणामतः देशवासियों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की मांग को स्वर दिया। अतः धर्मसुधार और राष्ट्रीयता की दूरी कम होने लगी। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा।

अतः नए अर्थतंत्र, बदलती शिक्षा–प्रणाली तथा प्रचार–प्रसार पाते संचार माध्यमों से आधुनिकीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिकीकरण की इस दृष्टि में वैज्ञानिकता थी, लोकसम्पृक्ति थी और तर्कसंगत व्यवहार था। परंतु आधुनिकता के इस प्रभाव–प्रसार का तात्पर्य यह नहीं कि भारतीयों ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का अनुकरण किया। पौराणिक–ऐतिहासिक व्याख्यानों के साथ–साथ समसामयिक चिंतकों, विचारकों, दार्शनिकों एवं समाज–सुधारकों की वैचारिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में भी साहित्य को समाज से जोड़ा। छूआछूत, जाति प्रथा तथा स्त्री–पुरुष में भेदभाव का विरोध, समानता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चेतना, वैज्ञानिकता का ग्रहण तथा नवीन मानवतावाद के आविर्भाव का समर्थन आदि प्रसंगों से आधुनिक युग की इस पृष्ठभूमि को समझा जा सकता है। इस युग में बहुत से अंतर्विरोधों के बावजूद वैचारिक मान्यताओं के स्रोतों ने जनसामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। सामान्यतया इसका प्रारंभ संवत 1900 अर्थात 1843 ई. से माना जाता है। कुछ विद्वानों ने 1857 से नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है– "सामान्यतया रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है, नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है, किंतु साहित्य–क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेंदु के रचनाकाल से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किंतु उसे भारतेंदु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, पृ. 437.)

1.3.1 भारतेंदु युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां

रीतिकाल की शृंगारिक कविता के बाद हिन्दी साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। साहित्य में ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। भारतेंदु युग की परिस्थितियां लगभग वही हैं, जो आधुनिक युग की रही हैं। हिन्दी कविता का वर्तमान युग भारतेंदु युग से ही प्रारंभ होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के आगमन से हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई राह मिली। भाषा का शिष्ट और सामान्य रूप लाने का श्रेय भारतेंदु को ही है। अब तक भक्ति व शृंगार संबंधी रचनाएं हो रही थीं। भारतेंदु ने हिन्दी साहित्य को जन जीवन से जोड़ने के लिए

तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल नए–नए विषयों को साहित्य में स्थान दिया। भारतेंदु ने भाषा की शक्ति को पहचाना और सबल शब्दों में घोषणा की– निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

उस समय की राष्ट्रीयता में अंग्रेजी शासन की सुव्यवस्था पर साधुवाद की भावना थी, साथ ही उनकी शोषक नीति के विरुद्ध विद्रोह का भाव भी था। धीरे–धीरे राजनीति और समाज सुधार संबंधी भावों का प्रवेश साहित्य में हुआ तथा भारतेंदु की कविता में राष्ट्रीय भाव झंकृत हो उठे।

काव्य में परिवर्तन तो हुआ, किंतु काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही बनी रही। जबकि गद्य खड़ी बोली में ही रचित हुआ। भारतेंदु युगीन पद्य का विकास भी भारतेंदु हरिश्चंद्र से प्रारंभ होता है।

पद्य साहित्य

भारतेंदु युग परिवर्तन का युग था। यह एक नई शुरुआत थी। इसमें नवीन विचारों का समावेश कविता में हुआ। इसके प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र थे। उनमें कविता करने की जन्मजात प्रतिभा थी। स्वाध्याय से उन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही इन भाषाओं का गहन अध्ययन भी किया। इन्होंने अनेक गद्य विधाओं को प्रश्रय दिया और काव्य ग्रंथों में 48 प्रबंध काव्य, 21 काव्य ग्रंथ तथा कुल 238 ग्रंथों की रचना की। उनकी प्रमुख कृतियां हैं– भक्त सर्वस्व, प्रेममालिका, फूलों का गुच्छा, प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रुवर्णन, प्रेम फुलवारी, प्रेम प्रलाप, प्रेम माधुरी, कृष्ण चरित आदि। इसके अतिरिक्त प्रबंध काव्यों में– भारत भिक्षा, भारत वीरत्व, 'विजयनी विजय पताका', 'विजय वल्लरी' प्रमुख हैं। भक्ति काव्य में हास्य व्यंग्य में– बकरी विलाप, बंदर सभा, नए ज़माने की मुकरी, उर्दू का स्यापा, होली आदि प्रमुख हैं।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन– ये प्रकृति प्रेमी कवि थे। यही कारण है कि इन्होंने अपना नाम 'प्रेमघन' रखा। इन्होंने 'आनंद कादंबिनी' तथा 'नागरी नीरद' पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। साथ ही 'सदर्भ सभा' व 'नागरी नीरद' की स्थापना कर समाज सुधार का कार्य किया। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं– मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, पितर प्रलाप, कलिकाल, तर्पण तथा सौभाग्य समागम आदि।

प्रतापनारायण मिश्र– ये भी भारतेंदु युग के प्रधान कवि थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रशंसा से उत्साहित होकर ये साहित्य सेवा में जुट गए। इन्होंने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं– प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, शृंगार विलास, दंगल खंड, लोकोक्ति शतः आदि। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई तथा प्राचीन गौरव का बखान कर देशभक्ति पूर्ण रचनाएं कीं।

राधाचरण गोस्वामी– भारतेंदु से प्रेरणा पाकर यह भी साहित्य–सेवा में जुट गए तथा 'भारतेंदु' नामक पत्र निकाला। इन्होंने राजभक्ति से संबंधित काव्य रचनाएं कीं। नवचेतना फैलाने के लिए अतीत का गौरवगान भी किया। इनकी रचनाओं में नवभक्तमाल, दामिनी इतिका, इश्क चमन, प्रेम बगीची, भारत संगीत, विधवा विलाप, यमलोक की यात्रा आदि प्रमुख हैं।

अम्बिकादत्त व्यास– काशी निवासी सुकवि अम्बिकादत्त व्यास ने बतौर 'पीयूष–प्रवाह' संपादक अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। पावस पचासा, सुकवि–सतसई, हो हो होरी और बिहारी–विहार अम्बिकादत्त व्यास की उल्लेखनीय कृतियां हैं। 'कंस–वध' नामक प्रबंध काव्य का सृजन आपने आरंभ किया, लेकिन यह पूर्ण न हो सका। तीन सर्ग ही लिखे जा सके। अपने 'भारत–सौभाग्य' और 'गोसकट' नामक नाटकों में भी इन्होंने गेय पदों का समावेश किया है।

राधाकृष्ण दास– राधाकृष्ण दास ने भारतेंदु के काम को ही आगे बढ़ाया। इन्होंने हिन्दी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का भरसक प्रयास किया। इनकी रचनाओं में उन्हीं विषयों को स्थान मिला जिनका प्रणयन भारतेंदु ने किया था। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं– विजयिनी विलाप, पृथ्वीराज प्रयाण, भारत–बारहमासा, देश–दशा, रामजानकी, रहिमन विलास, विनय, जुबिली आदि।

उक्त के अतिरिक्त ठा. जगमोहन सिंह, लाला सीताराम, मिश्रबंधु, जगन्नाथदास रत्नाकर, देवीप्रसाद पूर्ण, लाला भगवानदीन, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न आदि भी भारतेंदु मंडल के प्रधान कवि थे। इस प्रकार तत्कालीन सभी कवियों ने जनजागरण के लिए काव्य–रचनाएं की। कवियों का मुख्य ध्येय समाज सुधार एवं देशभक्ति पूर्ण रचनाएं करने का रहा। परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान इन कवियों ने किया इन सबकी अगुआई भारतेंदु हरिश्चंद्र ने की अतः उन्हीं के नाम पर इस युग का नाम 'भारतेंदु युग' पड़ा।

भारतेंदु युग की प्रमुख प्रवृत्तियां

भारतेंदु युग एक नया उत्साह, एक नया विचार लेकर साहित्य में आया। साहित्य में जहां नई गद्य दिशाएं खुलीं वहीं काव्य की विषयवस्तु, भाषा–शैली और छंद विधानों में भी परिवर्तन आया। इसका कारण वे परिस्थितियां थीं, जिन्होंने साहित्यकारों को विवश कर दिया। यही कारण है कि परंपरा से चली आ रहीं साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन आया।

1. **विषयवस्तु में वैविध्य**– भारतेंदु युग में गद्य एवं पद्य दोनों की विषयवस्तु परिवर्तित हो गई। परंपरा एवं नवीनता का समन्वय इस काल में दिखता है। उस समय के कवियों ने भक्तिपूर्ण रचनाएं कीं, किंतु देश की दशा पर आंसू भी बहाए– यथा–

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत – दुर्दशा देखी न जाई।। (भारतेंदु)

साथ ही कहा–

अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।। (भारतेंदु)

प्रेमघन ने कर लगाने पर कटाक्ष किया–

रोओ सब मुह बाय बाय
हाय टिकस हाय हाय।

कवियों, नाटककारों, निबंधकारों सभी ने एक स्वर से राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार का राग अलापा।

2. **जनवादी चेतना**– डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है– "भारतेंदु युग का साहित्य इस अर्थ में जनवादी है कि वह भारतीय समाज में पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है।" भारतेंदु युगीन काव्य में सुधारवादी दृष्टिकोण और पीड़ित शोषित के प्रति सहानुभूति उसे सच्ची जनवादी चेतना से जोड़ती है, यथा–

निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं
स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवैं।

3. **सामाजिक चेतना**– भारतेंदु युगीन कवियों की सामाजिक चेतना का भाव अंधविश्वास और कुरीतियों की आलोचना में लक्षित होता है। पश्चिमी रहन–सहन एवं बाल विवाह के विरोध में सच्चा समाज हित दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों का मत है कि सामाजिक उत्थान के अभाव में सच्ची राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव नहीं है।

4. **राजतंत्र का तिरस्कार**– यह युग राजाओं का था। राजाओं ने जनता पर ध्यान न देकर अंग्रेज़ों की दासता को स्वीकार किया। तत्कालीन कवियों में इसे लेकर गहरा क्षोभ था जिसे उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त किया।

5. **नवयुग चेतना**– भारतेंदु जी ने जन–जागृति के लिए जातीय संगीत के प्रचार का महत्व बताया था। उस काल के काव्य में ऐसी स्थितियां चित्रित हुईं जिनमें नवीन चेतना का भाव था। इनमें शिक्षा का महत्व, फैशन के कुपरिणाम, एकता की भावना, असंतोष का परित्याग आदि प्रमुख हैं।

6. **सांस्कृतिक पुनरुत्थान**– इन कवियों ने भारतीय संस्कृति का गौरव गान किया। साथ ही भारतीयों को एक नई ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की। सभ्यता एवं संस्कृति का सुधार इन कवियों ने प्रमुखतः किया।

7. **कलात्मकता का अभाव**– इस युग की कविता में कलात्मकता का अभाव पाया जाता है। संभवतः विषय–वैविध्य और युग–चेतना को समेटने के कारण कलात्मकता दब सी गई। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने भी स्वीकार किया है– "इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव के कारण इस उत्थान में विचारों का संक्रांति काल होना है। सामान्य जन तक पहुंचाने की ललक में कलात्मकता दब सी गई है।"

8. **भाषा–शैली**– काव्य की भाषा तो ब्रजभाषा ही थी, किंतु खड़ी बोली में भी रचनाएं होने लगीं। भारतेंदु ने सरल–सुलभ भाषा का प्रयोग किया। भावावेश के समय उनकी भाषा में छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, तथा पदावली सरल बोलचाल की हो जाती है। कवियों ने विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया। इस युग के कवियों द्वारा हास्य–व्यंग्य के लिए अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी किया गया– यथा–

विष्णु वाहिनी पोर्ट पुरुषोत्तम, भय मुरारि।
शैपन शिव, गौरी गिरीश, ब्रांडी क्रम विचारी।।

इस प्रकार भारतेंदु युगीन हिन्दी साहित्य में जहां साहित्य में नवीन विधाओं का समावेश हुआ वही नए–नए विषयों को लेकर रचनाएं हुई। भाषा को जन सामान्य के निकट लाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया।

मूल्यांकन

भारतेंदु युग हिन्दी साहित्य के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तन एवं इसके विकास की आधार भूमि का निर्माण इसी युग में हुआ। भारतेंदु जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार के व्यक्तित्व के कारण भारतेंदु युग हिन्दी साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश करने का श्रेय भारतेंदु जी को ही है। भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने साहित्य को जन साधारण की वाणी बनाया तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास किया। भारतेंदु युग के साहित्य का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि भविष्य में होने वाले हिन्दी साहित्य के विकास के लिए उसने आधारभूमि तैयार की। आने वाले द्विवेदी युग की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी इस साहित्य का महत्व है।

1.3.2 द्विवेदी युग : परिचय तथा प्रवृत्तियां

आधुनिक काल का द्वितीय युग 'द्विवेदी युग' कहलाता है। भाषा साहित्य के क्षेत्र में अराजकता एवं उच्छृंखलता का वातावरण बन गया। ऐसे में महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन होता है। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी को अराजकता के घेरे से बाहर निकाला। द्विवेदी युग की परिस्थितियां भी लगभग भारतेंदु युग जैसी ही थीं। भारत अंग्रेज़ों के चंगुल में फंस चुका था। 'युगांतर' और 'संध्या' पत्रिका द्वारा जन जागरण का कार्य किया गया। 'वन्देमातरम्' के नारों द्वारा जनता में जोश और उमंग को बुलंद किया गया। 'वन्देमातरम्' शब्द पर नियंत्रण लगा कर जनता की आवाज को बंद करने का षड्यंत्र रचा। इस समय गांधीवादी विचारधारा समस्त राष्ट्र में व्याप्त थी।

अंग्रेज़ सरकार ने जनता के समक्ष मार्ले–मिंटो सुझाव प्रस्तुत किए। 1911 में बंग–विभाजन रद्द किया गया। गांधी जी के पदार्पण के फलस्वरूप राजनीतिक परिदृश्य एकदम परिवर्तित हो गया। गांधी जी ने रौलेट एक्ट का विरोध किया। सन् 1919 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया गया। सन् 1920 में लोकमान्य तिलक पुलिस बर्बरता के शिकार हुए। फलस्वरूप राजनीतिक परिदृश्य के साथ साहित्यिक वातावरण भी बदल गया। सन् 1900 से 1920 के बीच जितनी भी घटनाएं घटीं, सबका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। गांधी जी के सत्य, अहिंसा, मानवता, बंधुत्व और राष्ट्रीयता का स्थायी प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथूराम शर्मा शंकर, श्रीधर पाठक, महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के प्रमुख कवि हैं।

द्विवेदी युग में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखता है। यह परिवर्तन तत्कालीन समाज सुधार आंदोलनों द्वारा उत्पन्न हुआ। राजा राममोहन राय, एनी बेसेंट, दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, रामकृष्ण परमहंस ने समाज सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल

सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन तथा गांधीवादी विचारधारा के लोगों ने अपने–अपने तरीके से कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। कई अमानुषिक प्रथाओं के खिलाफ आवाज उठाई गई। छुआछूत, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, पर्दाप्रथा, वर्णभेद आदि का व्यापक विरोध किया गया। राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की भावना ने लोगों को जाति, धर्म, वंश से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने लोगों को एक नई राह दिखाई। इस युग में कर्मकांड का विरोध, हिंदू–मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार आदि के लिए नेताओं ने कई कार्य किए। इस प्रकार समग्र रूप में द्विवेदी युग सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवाद का युग था।

भारतेंदु के अवसान के बाद एक रिक्तता आ गई थी। साहित्य में एक प्रकार से अराजकता उच्छृंखलता और पथभ्रष्टता का वातावरण बन गया था। राष्ट्रीयता को वाणी देने के लिए एक सशक्त भाषा की आवश्यकता थी। अंग्रेज भाषा–भेद नीति को बनाए रखकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। किंतु हिन्दी प्रेमी हिन्दी की उन्नति के लिए प्रयत्नशील थे। तत्पश्चात राजनीतिक आंदोलनों वैज्ञानिक आविष्कारों तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिन्दी के विकास में सहायता पहुंची। भाषा अनगढ़ थी, अपरिनिष्ठ थी तथा काव्योचित गुणों से विहीन हो रही थी। ऐसे समय में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का पदार्पण हुआ। उन्होंने भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का कार्य किया। एक समर्थ आलोचक की भांति उन्होंने विभिन्न रचनाकारों की रचनाओं को सुधारा। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से भाषा को सजाने व संवारने का कार्य किया। मुहावरों का प्रयोग तथा स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग किया। तत्कालीन पत्रिकाओं में नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, इंदु, मर्यादा, प्रताप, अभ्युदय, भारतमित्र, अर्जुन और आज में राष्ट्रीय विचारधारा से पूर्ण साहित्य का प्रकाशन होता था जिससे लोगों में राष्ट्रीय चेतना फैली। इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ।

प्रमुख साहित्यकार

इस युग को दिशा देने का कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया, इस कारण इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी भाषा–साहित्य को अराजकता के घेरे से बाहर निकाला। सरस्वती पत्रिका में टिप्पणियां लिखकर उन्होंने हिन्दी भाषा–साहित्य की उन्नति के लिए कार्य किया। इस युग में नाटक, कहानी, उपन्यास एवं निबंध विधा का पर्याप्त विकास हुआ। पं. किशोरी लाल गोस्वामी ने 'चौपट चपेट' तथा 'मयंकमंजरी', ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीता बनवास', हरिऔध ने 'रुक्मिणी', शिवनंदन सहाय ने 'सुदामा' नाटक की रचना की। ये नाटक मौलिक थे। इसके अतिरिक्त बांग्ला नाटक अनूदित हुए। पारसी थियेटरों का भी विकास हुआ, किंतु उनका स्तर काफी गिरा हुआ था।

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी प्रमुख हैं। तारा, तरुण, तपस्विनी, चपला, लीलावती, सुल्ताना रजिया बेगम और लवंगलता इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यासों की रचना की। उपन्यास सम्राट के रूप में प्रसिद्ध प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को नई दिशा दी। प्रेमा, रूठी रानी और रोवासदन इनके तीन उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए।

हिन्दी साहित्य में स्वस्थ कहानी–लेखन एवं उसका विकास भारतेंदु युग के बाद यानी आलोच्य युग में हुआ। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन (1990) के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म मान्य है। इंदुमती (किशोरीलाल गोस्वामी), प्लेग की चुड़ैल (भगवानदीन 'बी.ए.'), ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल), दुलाईवाली (बंग महिला), राखीबंद भाई (वृंदावनलाल वर्मा) आदि आरंभिक कहानियों में शुमार होती हैं।

कहानी विधा की प्रथम मौलिक एवं श्रेष्ठ कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी थी। यह 1915 में प्रकाशित हुई। इससे पूर्व 1911 में 'ग्राम्या' कहानी जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखी गई। कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचंद का अप्रतिम स्थान है। उनकी 'पंचपरमेश्वर' कहानी 1916 में प्रकाशित हुई। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भावात्मक संघर्ष और मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व दिखता है। आकाशदीप, पुरस्कार, इंद्रजाल, छाया आदि इस काल की प्रमुख कहानियां हैं। इसके अतिरिक्त राधिकारमण लिखित 'कानों में कंगना' तथा सुदर्शन की 'एक लोटा पानी' भी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

निबंध साहित्य की दृष्टि से यह काल बहुत समृद्ध है। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विधा को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक ज्ञान–विषयक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी अनेक उपयोगी निबंधों की रचना की। उन्होंने बेकन के निबंधों का अनुवाद किया। इस युग में प्रकाशित 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', 'इंदु', 'मर्यादा', 'प्रभा' आदि पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों से संबंधित निबंध प्रकाशित होते थे। सरदार पूर्णसिंह ने 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम' आदि लोकप्रिय निबंध लिखे। बालमुकुंद गुप्त ने समसामयिक राजनीति को निबंध के विषय के रूप में चुना। 'शिवशंभु का चिट्ठा' इनका महत्वपूर्ण निबंध है। इसके अतिरिक्त श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, रामचंद्र शुक्ल ने भी प्रमुख निबंध लिखे।

गद्य विधाओं के विकास के साथ ही इस युग में अनेक प्रसिद्ध काव्यकृतियों की भी रचना हुई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने काव्यभाषा के रूप में अवधी एवं ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली को अपनाया।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने शृंगारादि पारंपरिक विषयों पर 'सनेही' उपनाम से एवं राष्ट्रीय भावनाओं पर 'त्रिशूल' उपनाम से अभिव्यक्ति दी। सामाजिक समस्याओं को गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने काव्य का विषय बनाया। उन्होंने उर्दू शैली के प्रबंधों और छप्पयों में रचनाएं कीं। 'राष्ट्रीय वाणी' तथा 'त्रिशूल तरंग' उनके गीतों का संकलन है। उन्होंने देशवासियों को प्रेरित करते हुए कहा–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।

'कुसुमांजलि', 'प्रेमपचीसी', 'कृषक वंदन', 'करुणा कादम्बिनी' उनके प्रसिद्ध काव्य–संग्रह हैं।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे लोकप्रिय कवि थे। द्विवेदी जी की प्रेरणा से वे काव्यरचना में प्रवृत्त हुए। उनकी प्रथम रचना 'हेमन्त' सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई।

इसके अतिरिक्त पौराणिक कथानक को लेकर लिखी गई काव्यकृतियां 'उर्मिला', 'हिडिम्बा' 'कैकेयी', 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया' आदि प्रमुख हैं। गुप्त जी ने इन महिला पात्रों को काव्य का आधार बनाया तथा उपेक्षित पात्रों को महिमामंडित किया। नारी की गौरवगाथा का गान कर उन्होंने पुरुष शासित समाज को चुनौती दी– यथा–

नारी निकले तो असति है
नर यति कहा कर चल निकले।

गुप्त जी ने 'साकेत' तथा 'भारत भारती' जैसे प्रबंध काव्यों की रचना कर देशवासियों को आत्मोद्धार के लिए प्रेरित किया। उनकी अन्य रचनाएं हैं– पंचवटी, जयद्रथवध, वीरांगना, सिद्धराज, स्वदेश संगीत एवं वैतालिक आदि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली कविता के प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने खड़ी बोली को स्थिर करने का भागीरथ कार्य किया। वे स्वयं कवि थे, कवि निर्माता थे। उनकी रचनाएं हैं– नागरी, सुमन, द्विवेदी काव्य माला, कविता कलाप, देवीस्तुति, काव्य–मंजूषा आदि।

हरिऔध जी भी द्विवेदी युग के प्रधान कवि रहे हैं। वे कृष्णभक्त थे तथा ब्रजभाषा में उन्होंने अनेक कवित्त–सवैया ग्रंथों की रचना की। प्रिय प्रवास, पद्यप्रसून, चुभते चौपदे, बोलचाल, रसकलस, प्रेम प्रपंच, वैदेही–वनवास एवं प्रेमपुष्पोहार आदि आपके काव्य ग्रंथ हैं। खड़ी बोली को काव्य के उपयुक्त बनाने वाले अग्रणी कवि हरिऔध ने द्विवेदी युग की भाषा संबंधी कर्कशता में सरसता संचारित की है और अपनी रचनाओं में मानवीय रूपों को प्रस्तुत किया है।

स्वच्छंदतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का नाम प्रमुख है। खड़ी बोली की इनकी रचना 'जन्मभूमि भारत' है। इनकी कविता में राष्ट्रीयता का भाव प्रमुख रूप से मिलता है। मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न, स्वदेश गीत, हिंदुओं की हीनता, पुस्तक प्रार्थना आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। हिन्दी–उर्दू, बांग्ला एवं संस्कृत की कविताओं का संकलन–संपादन रामनरेश त्रिपाठी ने अत्यंत कर्मठतापूर्वक 'कविता–कौमुदी' में किया है। इसके आठ भाग हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी कवियों में प्रमुख हैं। उनकी प्रधान कृतियां 'चेतावनी', 'पत्नी' तथा 'हिमतरंगिनी' है। सियारामशरण गुप्त पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। उनकी काव्य रचनाओं में उनका हृदय पक्ष प्रकट हुआ है। प्रसिद्ध रचनाएं 'उन्मुक्त', 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'वीर बालक', 'श्री राघव विलाप' तथा 'तिलक वियोग' हैं। 'विवाह तथा 'अविश्वास' वीररस पूर्ण रचनाएं हैं।

नाथूराम शंकर शर्मा द्विवेदी युग के ऐसे कवि हैं जिन्होंने समस्यापूर्ति में काव्य–रचना की। वे आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित थे तथा उनके काव्य में तार्किकता एवं तीखापन मिलता है। उनकी प्रकाशित कृतियां हैं– 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'लोकमान्य तिलक', 'गर्मख्डा रहस्य'। उन्होंने समाज सुधार पर आधृत रचनाएं की जिनमें प्रधान हैं– 'पंचपुकार', 'मेरा महत्व', 'शोकाश्रु गीत', 'राजभक्ति', 'बाल विनोद', 'होली', 'नीति' आदि। नाथूराम जी को 'खड़ी बोली के कबीर' की उपाधि प्राप्त है।

मुकुटधर पांडेय की रचनाएं हैं– 'काल की कुटिलता', 'जीवन साफल्य', 'रत्नाकर', 'संकेत शतक', 'एक शुभ समय', 'कैकेयी का पत्र' आदि। 'विश्वबोध' पांडेय जी इनकी ऐसी रचना है जिसमें दलितों एवं दीनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है।

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग के अन्य कवि हैं– ठाकुर गोपाल सिंह, श्रीमन्न द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित चिंतामणि, गिरिधर शर्मा नवरत्न आदि।

द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्तियां

द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' की संज्ञा भी दी जाती है। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **विषय व्यापकता**– द्विवेदी युग किसी विषय–विशेष में बंधा नहीं, इसका कारण द्विवेदी जी का प्रेरणास्पद व्यक्तित्व रहा। भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर उत्कृष्ट साहित्य की रचना करना एवं करवाना उनका लक्ष्य रहा। द्विवेदी युग में विषयों का विस्तार हुआ, तत्कालीन समस्याओं को साहित्यकारों ने विषयवस्तु के रूप में चुना। जनसाधारण एवं सर्वसाधारण से संबंधित रचनाएं होने लगीं। नारी पुनरुत्थान, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समस्याओं के निवारण, मानवीयता, आदर्शवाद एवं यथार्थवाद को लेकर रचनाएं की गईं। अलौकिकता का स्थान लौकिकता ने ले लिया। कल्पना का स्थान यथार्थ ने ले लिया। साहित्य विशिष्ट वर्ग से हटकर सर्वहारा वर्ग तक पहुंच गया।

2. **राष्ट्रीय जागरण, देशभक्ति व समाज सुधार**– इस काल तक आते–आते अंग्रेजों के अत्याचारों के खिलाफ नेताओं से लेकर साहित्यकारों ने भी कमर कस ली। लेखों एवं कविताओं के माध्यम से साहित्यकारों ने आवाज बुलंद की। यथा–

   जन जय भारत भूमि भवानी
   अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी (गुप्त जी)

   राष्ट्रीयता का स्वर लेखनी में भी दृष्टिगोचर हो रहा था। जागरण और अभियान गीतों द्वारा कवियों ने भारतीय जनमानस को अन्यायी शासकों के विरुद्ध तैयार किया। नाथूराम शंकर के शब्दों में–

   देशभक्त वीरो, मरने से नहीं डरना होगा।
   प्राणों का बलिदान, देश की वेदी पर करना होगा।

   रूपनारायण पांडेय कह उठे–

   उठो, उठो, क्यों शिथिल पड़े हो?
   देखो सुदिन सबेरा है। (बलिदान गान)

   समाज में व्याप्त बुराइयों के निवारण के लिए साहित्यकारों ने रचनाएं की। उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक एवं लेखों के माध्यम से यह संभव हो सका। राष्ट्रीय जन आंदोलन, राजनीतिक उथल–पुथल, मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा सामाजिक काव्य–रचना की प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। विधवा, किसान, अछूत, नारी,

दुर्भिक्ष, दलित, छुआछूत, दहेज, छल–कपट, निर्धनता, नैतिक पतन आदि वैविध्यपूर्ण विषयों पर रचना हुई। यथा–

जाति पाति के धर्मजाल में उलझे पड़े गंवार
मैं इन सबको सुलझा दूंगा, करके एकाकार।

इस प्रकार कवियों ने समाज को नई राह पर लाने का महती कार्य किया।

3. **मानवतावादी दृष्टिकोण**– इस युग में मानवतावाद का स्वर प्रमुखतः दिखाई देता है। खंडन–मंडन, तर्क–वितर्क और बौद्धिक जागरण के कारण सत्य को ढूंढने की प्रवृत्ति जाग गई। राम और कृष्ण देवरूप में नहीं वरन् मानवीय रूप में चित्रित होने लगे। मानवीय भावनाओं के जागरण का उदाहरण है–

मानव का जीवन ही जग में
मानवता का माप हुआ। (ठाकुर गोपाल सिंह)

द्विवेदी युग में मानवता को धर्म से भी बड़ा माना गया, ईश्वर सेवा का ही रूप और जनसेवा में भी माना गया। सरस्वती जनचेतना की पत्रिका बन गई।

4. **बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा**– शिक्षा, प्रसार, वैज्ञानिक आविष्कार, पाश्चात्य प्रभाव ने बुद्धिवाद को जाग्रत किया और विचार–स्वातंत्र्य उभरा। अतः द्विवेदी युगीन कविता भी बुद्धिवाद से प्रभावित हुई; यथा–

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?

5. **नारी के प्रति नवीन दृष्टि**– द्विवेदी युग में नारी का एक नया रूप प्रस्तुत किया गया। नारी राष्ट्रीय आंदोलन की सहभागिनी बनी तथा विलासिता की वस्तु मात्र नहीं रह गई। वह प्रेरणादायी रूप में चित्रित की गई। डॉ. जयकिशन प्रसाद के अनुसार– "द्विवेदी युगीन काव्यधारा में नारी भारतीय संस्कृति की मूर्ति है इसलिए उसमें तपस्या, त्याग, आत्मोत्सर्ग की भावनाएं कूट–कूटकर भरी हैं।

6. **इतिवृत्तात्मकता**– उपयोगितावादी प्रभाव के कारण कविता इतिवृत्तात्मक हो उठी। फलतः उसमें भावात्मकता, काल्पनिकता, सरसता और माधुर्य भाव कम आया। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान रही।

7. **छंद–विधान**– द्विवेदी ने परंपरागत छंद के प्रति अरुचि दिखाई। अतुकांत छंद को भी इस काल के कवियों ने अपनाया। परिणामस्वरूप नए छंदों की महत्ता उभरी। लावनी व उर्दू छंदों के प्रयोग हुए।

मूल्यांकन

द्विवेदी युगीन साहित्य का मूल्य आज भी महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति का विकास, स्वच्छंदतावाद का श्रीगणेश, मुक्त छंद की शुरुआत, हिन्दी की विविध गद्य विधाओं का विकास, भाषा–परिमार्जन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो इस काल को महत्वपूर्ण बनाती हैं। इस युग में पौराणिक आख्यानों को समसामयिक संदर्भ में रखकर साहित्य रचना हुई। साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार हुआ। इस प्रकार द्विवेदी युग ने साहित्य को एक नया आयाम दिया।

1.3.3 छायावाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

आधुनिक काल का तीसरा युग 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। हिन्दी काव्यधारा के विकास मे छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत व महादेवी वर्मा जैसे प्रमुख साहित्यकार हुए। छायावाद ने न केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर वरन काव्य–भाषा और संरचना–शिल्प की दृष्टि से भी हिन्दी कविता को समृद्ध किया है और उसे उत्कर्षता प्रदान की है। इस काल में साहित्य, संगीत एवं कला तीनों का समन्वय उत्पन्न हुआ। नई उपमा, नए प्रतीक, नए अलंकार प्रयुक्त हुए। काव्य के क्षेत्र में आए इस अरुणोदय को पहले तो कुछ साहित्याचार्यों ने हल्केपन से 'छायावादी काव्य' नाम से अभिहित किया। किंतु बाद में साहित्य–सुधियों द्वारा यही नाम इस अभिनव अरुणोदयी काव्यधारा का अभिधान बन गया।

नामकरण

छायावाद का प्रारंभ निराला रचित 'जूही की कली' से माना जाता है, जिसका प्रकाशन 1916 में हुआ। कुछ विद्वान मुकुटधर पांडेय द्वारा रचित 'कुररी के प्रति' से इसका आरम मानते है। वस्तुतः इससे पूर्व छायावाद के नामकरण पर विचार कर लेना आवश्यक है। बीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कविता में एक नई प्रवृत्ति का उदय हो रहा था, जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न थी। पंत, प्रसाद, निराला की नई तरह की कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 1920 तक इन कविताओं के लिए 'छायावाद' नाम रूढ़ हो गया। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द को छायाभास से निकला हुआ बतलाया है। इस संबंध में प्रसाद जी लिखते हैं– "अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है।"

'सरस्वती' पत्रिका में सुशील कुमार नामक किसी लेखक ने 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक एक निबंध लिखा। उनके लिए ये कविताएं टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' होने के कारण छायावादी कही जाने लगीं। आचार्य शुक्ल ने कहा भी है– "प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएं 'छायावाद' कही जाने लगीं थीं।"

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है "... बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रमयी भाषा शैली या प्रतीक–पद्धति के रूप में माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ में।"

छायावाद नाम स्वीकृत होने के पश्चात इसके अभिप्राय को लेकर अनेक मत आए। इस संदर्भ में द्विवेदी जी का कथन है– "शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"

आचार्य शुक्ल ने कहा– "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहां उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।"

छायावाद नाम पर पंत जी की सहमति नहीं है। उनका कथन है– "छायावाद नाम से तो मैं संतुष्ट नहीं हूं। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों के द्वारा कविता के उपहास का सूचक है।

विद्वानों ने छायावाद को अनेक प्रकार से परिभाषित किया। महादेवी वर्मा ने कहा– "प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म सौंदर्य सत्ता का उद्घाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्मा–विसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी ने कहा– "जिस प्रकार इतिवृत्तात्मकता के आगे की चीज छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है।"

डॉ नगेन्द्र का मत है– "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव–पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के संदर्भ में स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की चर्चा होती रही है। उसमें रहस्य भावना के साथ–साथ मानवतावादी दृष्टिकोण को भी स्वीकारा गया है। साथ ही इसे राष्ट्रवादी आंदोलन से भी जोड़ा गया। जैसा कि नामवर सिंह का कथन है– "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ–विस्तार होता गया।

छायावाद की परिस्थितियां भी विचित्र थीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थितियां बदल रही थीं। गांधीजी का आंदोलन उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मजदूरों के बीच फैल गया। दासता से मुक्ति की भावना जनता में फैल चुकी थी। राष्ट्रवाद और देशप्रेम की भावना अपने चरम पर थी। जाति, धर्म के भेदभाव कम हो रहे थे। पुनर्जागरण ने न केवल यूरोप वरन् भारत को भी प्रभावित किया। मुक्ति की इच्छा में छटपटाते भारतीयों में एक नए उत्साह और उमंग का संचार इन कवियों ने किया। कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने–समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

प्रमुख छायावादी साहित्यकार

भक्तिकाल के बाद छायावाद ही ऐसी काव्यधारा है जिसमें इतने लोकप्रिय कवि एवं साहित्यकार हुए। प्रमुख छायावादी कवियों पर संक्षिप्त दृष्टि डालनी आवश्यक है।

जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य–लेखन के प्रमुख कवि हैं। इनकी प्रथम रचना जो खड़ी बोली में लिखित है वह है– 'कानन कुसुम'। प्रसाद के नाटकों एवं काव्यकृतियों का अद्वितीय योगदान रहा। भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में प्रसाद ने लोकप्रियता प्राप्त की। 'कामायनी' जैसा महाकाव्य, आंसू जैसा विरह काव्य, लहर, झरना, कानन कुसुम आदि कृतियां प्रसाद जी की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव की रचनाएं भी कीं जिनमें प्रमुख हैं– पेशोला की प्रतिध्वनि, महाराणा का महत्व एवं शेरसिंह का शस्त्र समर्पण।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के चार प्रबल स्तंभों में से एक हैं। विडंबना है कि निराला की प्रथम कृति 'जूही की कली' को द्विवेदी जी ने लौटा दिया था, यही रचना बाद में छायावाद और मुक्त छंद की पहली रचना स्वीकार की गई। अनामिका, परिमल, तुलसीदास, नए पत्ते, कुकुरमुत्ता, आराधना, अणिमा, बेला, सांध्य काकली आदि प्रधान काव्यकृतियां हैं। निराला का संपूर्ण काव्य संघर्ष और विद्रोह का काव्य है। हास्य–व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में निराला जी सिद्धहस्त हैं। आचार्य शुक्ल जी ने निराला के विषय में लिखा कि उनमें 'बहुवस्तुस्पर्शिनी' प्रतिभा है। निराला के काव्य में भावबोध और कला दोनों ही स्तरों पर वैविध्य मिलता है। निराला के काव्य में एक ओर उल्लास है तो दूसरी ओर अवसाद। एक ओर क्रांति है दूसरी ओर प्रपत्ति।

प्रकृति के सुकुमार चितेरे के रूप में प्रसिद्ध **सुमित्रानंदन पंत** छायावाद के प्रमुख कवि रहे हैं। उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'उच्छ्वास' है। इनकी अन्य रचनाएं पल्लव, वीणा, ग्रंथि, ज्योत्सना, गुंजन हैं। ये उनके प्रथम चरण की रचनाएं हैं। द्वितीय चरण की रचनाओं में प्रगतिशीलता मिलती है, ये हैं– युगांत, युगवाणी तथा ग्राम्या आदि। इस काल में पंत, अरविंद दर्शन से प्रभावित रहे। यह पंत की काव्य यात्रा का तीसरा चरण है, इस समय उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया। इन कविताओं में स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, अतिमा, वाणी एवं स्वर्णकिरण हैं। पंतजी का संपूर्ण काव्य प्राकृतिक सौंदर्य एवं शिवम् का सम्मिलित रूप है। मानव और प्रकृति दोनों को इनके काव्य में स्थान मिला है।

महादेवी वर्मा 'आधुनिक मीरा' के रूप में विख्यात हैं। इनका प्रथम काव्य–संकलन 'नीहार' है। इसके अलावा रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत आदि संग्रह 'यामा' में संकलित हैं। महादेवी का काव्य नारी की वेदना और आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति है। वे इस वेदना को आध्यात्मिक शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं इसलिए उनके काव्य में रहस्यवाद की प्रमुखता है।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

छायावाद काव्य विविध भावों से युक्त था। इस काल में रहस्यवादी, प्रकृति संबंधी रचनाएं और स्व की अभिव्यक्ति वाली कविताएं हैं। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **आत्माभिव्यक्ति की भावना**– छायावाद में स्व की भावना को कवियों ने व्यक्त किया है। कवियों ने 'मैं' के भावों को व्यक्त किया। अपनी निजता को आत्मीय ढंग से वाणी दी। कवियों ने न केवल प्रणय–भावना को वाणी दी, अपितु अपने दुखों को भी अभिव्यक्त किया। यथा निराला के भाव–

   धन्य मैं पिता निरर्थक था
   कुछ भी तेरे हित न कर सका। (सरोज स्मृति)

   इसी प्रकार महादेवी ने भी आत्मपीड़ा को अभिव्यक्त किया है–

   मैं नीर भरी दुख की बदली।

2. **रूढ़ियों से मुक्ति**– छायावाद का कवि सामाजिक बंधनों के बीच छटपटा रहा था क्योंकि उसके हृदय में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न हो गई थी। यह

आत्मप्रसार' की आकांक्षा ही विभिन्न रूपों में छायावाद में व्यक्त हुई है। आत्मप्रसार की इस इच्छा ने छायावादी कवियों को यह समझ प्रदान की कि संकीर्णता और रूढ़िवादिता से आत्मविकास नहीं किया जा सकता है। मुक्ति की आकांक्षा उनके हृदय में पनप रही थी तथा जीवन–मूल्य अवरोध बन रहे थे।

3. **रहस्यवाद**– इन कवियों ने ऐहिक व्यक्तिकता की क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए उस पर रहस्यात्मकता का आवरण डाल दिया। छायावाद में रहस्य भावना का सामाजिक आधार यही है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार– "काव्य में रहस्य–भावना एक प्रकार से 'परोक्ष की जिज्ञासा' है।.. अब वह प्रकृति और सृष्टि को जानना–समझना चाहता है। स्वच्छंदतावादी काव्य की यह खास विशेषता है। यथा–

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस अज्ञात को जानने की जिज्ञासा ही रहस्य भावना है। छायावादी कवियों ने रहस्य–भावना की अभिव्यक्ति कई रूपों में की है।

4. **प्रकृति–प्रेम**– छायावादी कवि प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति इन कवियों के हृदय की मुक्ति और स्वच्छंदता की प्रेरणा बन गई। प्रकृति को इन कवियों ने सहचरी, प्रेयसी, उपदेशदात्री तथा उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रकृति के कण–कण से अपना रागात्मक संबंध जोड़ा; यथा–

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही
वह संध्या सुंदरी परी सी (संध्या सुंदरी)

पंत तो प्रकृति के सुकुमार चितेरे के रूप में विख्यात हुए। वस्तुतः यह प्रकृति के साथ मनुष्य का नया रिश्ता था, जो छायावादी कविता के माध्यम से व्यक्त हुआ।

5. **नारी–स्वातंत्र्य की भावना**– छायावाद में नारी को सहज रूप में व्यक्त किया गया। उसे मानवी, सहचर, मित्र के रूप में सम्मान मिला। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में।

छायावादी नारी के सौंदर्य में शरीर से अधिक भावों की प्रधानता है। इस युग में नारी सौंदर्य में स्थूलता और शारीरिकता की अपेक्षा कल्पनाशीलता तथा भावात्मकता की प्रधानता है।

6. **राष्ट्रीय भावना**– छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना कई रूपों में अभिव्यक्त हुई। इन कवियों का देशप्रेम संकीर्ण नहीं है; यथा–

अरुण, यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

छायावादी कवियों ने स्वतंत्रता का आह्वान किया। उन्होंने असहाय एवं शोषितों को वाणी दी, शोषकों को धिक्कारा।

7. **कल्पना का नवोन्मेष**– छायावाद में जिज्ञासा एवं कौतूहल का भाव दिखता है। जिज्ञासा ने कवियों को कल्पनाशील बनाया। पंत ने 'कल्पना' को 'कल्पना' के ये विह्वल बाल कहा तो निराला ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा। इन कवियों ने मूर्त को अमूर्त तथा अमूर्त को मूर्त रूप में चित्रित किया है।

8. **छंद से मुक्ति**– इन कवियों ने भाषा में, छंद में नवीन प्रयोग किए। मुक्त छंद इसी काल में प्रमुखतः रचित हुआ। गीतों एवं प्रगीतों की रचना की। यही कारण है कि महाकाव्यों की रचना कम हुई।

9. **बिंब और प्रतीक**– छायावादी कवियों ने प्रकृति से बिंब ग्रहण किए। इसके अतिरिक्त परंपरागत बिंबों को नया रूप दिया गया। प्रतीक–विधान भी अनुपम उपमानों से भरा पड़ा है। लाक्षणिक वक्रता भरी भाषा इस काल की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

मूल्यांकन

अतः कहा जा सकता है कि छायावाद का हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। छायावाद मुक्ति का, वैयक्तिक अनुभूतियों का, प्रकृति का, मानवता का तथा स्वाधीनता का काव्य है। यह क्लासिक कृतियों का भंडार है।

1.3.4 प्रगतिवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

छायावाद के बाद एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का उदय हुआ। प्रगतिवाद का उदय 1936 में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना से माना जाता है। व्यक्ति की मुक्ति का जो लक्ष्य छायावादी कवियों के सामने था, उसका स्थान समाज और राष्ट्र की मुक्ति ने ले लिया।

राजनीतिक रूप से देश में उग्रवादी एवं उदारवादी आंदोलन चल रहे थे। गांधी जी का सविनय अवज्ञा आंदोलन सारे राष्ट्र में व्याप्त हो चुका था। जमींदारी प्रथा, मजदूरों का शोषण देशी रियासतों में जनता के अधिकारों पर बहस चल रही थी। समाजवादी पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। प्रगतिवादी उसे कहा गया जो मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास रखता हो तथा उसी के अनुसार साहित्य रचना करता हो। जबकि प्रगतिशील वह है जो प्रगतिशील मूल्यों में विश्वास करता हो। यह नया दृष्टिकोण था–पुराने रुढिबद्ध जीवन मूल्यों का त्याग, शोषण और दमन का विरोध, समानता और लोकतंत्र में विश्वास इसका आधारबिंदु थे।

प्रमुख साहित्यकार

प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिन्दी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि भी इससे अछूते नहीं रहे। इसके अलावा रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री भी इसी काव्यधारा की देन थे।

समकालीन हिन्दी काव्य परिदृश्य में नागार्जुन को महत्ता प्राप्त है। इनके काव्य में ठेठपन, गहन आंचलिकता व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता पाई जाती है। प्रमुख काव्य संग्रह है– युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, तालाब की मछलियां, प्यासी पथराई आंखे आदि।

केदारनाथ अग्रवाल भी इसी काव्यधारा की देन हैं। भावुकता, रुमानी आदर्शवाद इनकी कविता की प्रधान विशेषताएं हैं। बसंती हवा, चंद्रगहना से लौटती बेर से इनकी खास पहचान बनी। 'गुलमेंहदी', 'अपूर्वा' तथा 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' इनके प्रमुख काव्य संग्रह है।

शमशेरबहादुर सिंह को प्रयोगवादी भी कहा जाता है। किंतु रूप और शिल्प उन्हें प्रकट सच्चाइयों की तरह लगते हैं। प्रमुख काव्य संग्रह हैं– 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'इतने पास अपने' आदि।

गजानन माधव मुक्तिबोध की दृष्टि मार्क्सवादी रही है। उन्होंने यथार्थ चित्रण के लिए फेंटेसी का प्रयोग किया है, इस प्रकार उनकी रचनाओं में नाटकीयता है। 'चांद का मुह टेढा है', 'भूरी–भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' उनकी प्रधान रचनाएं हैं।

त्रिलोचन शास्त्री ने मामूली प्रसंगों पर कविताएं लिखीं। सॉनेट उनका प्रधान छंद है। 'धरती', 'दिगंत', 'ताप के तापे हुए दिन', 'उस जनपद का कवि हूं' इनकी प्रधान रचनाएं हैं।

प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

प्रगतिवाद का संबंध जीवन और जगत के नए दृष्टिकोण से है। जीवन के प्रति लौकिक दृष्टि ही इस साहित्य का आधार है और यह सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। प्रगतिवादी कवि न इतिहास की उपेक्षा करता है न वर्तमान का अनादर, न ही वह भविष्य के रंगीन सपने बुनता है। कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **सामाजिक यथार्थ दृष्टि–** प्रगतिवादी कवि के पास सामाजिक यथार्थ को देखने की विशेष दृष्टि होती है। एक वर्ग चेतना प्रधान दृष्टि वाला है। कवियों ने वास्तविकता बोध और वस्तुपरक निरीक्षण दोनों पर ध्यान दिया है; यथा–

   बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पांच तमाचे
   इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।

   कवि कभी सामाजिक विषमता को उजागर करता है तो कभी विक्षोभ व्यक्त करता है, कभी अत्याचार के विरुद्ध गर्जना करता है।

2. **परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव–** प्रगतिवाद में प्रकृति और परिवेश के प्रति कवि का लगाव भी ध्यान आकृष्ट करता है। ये कवि प्रकृति में जीवन की सक्रियता का लगाव पाते हैं। इनका प्रकृति बोध भी यथार्थ बोध से विच्छिन्न नहीं है।

3. **जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण–** प्रगतिवादी कवि जीवन की स्वीकृति के कवि हैं। "मुझे विश्वास है कि पृथ्वी रहेगी"– यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रगतिवादी कवि अंधकार और भयानक निराशा में भी एक प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं; यथा–

रोज कोई भीतर चिल्लाता है कि कोई काम बुरा नहीं
बशर्ते कि आदमी खरा हो, फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।

4. **भविष्य दृष्टि**– ये कवि यथास्थितिवादी नहीं है। सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर हैं। यही इनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि है। उनकी कल्पना स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है।

5. **व्यंग्यात्मकता**– प्रगतिवाद की सबसे प्रमुख विशेषता व्यंग्यात्मकता है। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है– "हिन्दी कविता में व्यंग्य कविता का जितना सुंदर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कहीं नहीं।" कथ्य से लेकर छंद, भाषा और लय तक में वे व्यंग्य उपजाने में सफल रहे हैं।

6. **काव्यभाषा, छंद और लय**– प्रगतिवादी कवियों की भाषा का गुण है– संप्रेषणीयता। भाषा सादगीपूर्ण, सरल और सहज है। इनके बिंब भी सीधे–सादे तथा अनलंकृत हैं। लय विन्यास तथा छंद–विधान भी अद्भुत है। आवृत्ति युक्त लय सहज ही प्रभावित करती है।

मूल्यांकन

प्रगतिवाद का एक काव्य प्रवृत्ति के रूप में और व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ऐतिहासिक महत्व है। प्रगतिवाद ने कविता की अवधारणा को बदला, साहित्य के रचना–संसार को महत्व दिया। कविता का संसार अधिक यथार्थ, प्रमाणिक, व्यापक और विश्वनीय लगने लगा।

1.3.5 प्रयोगवाद : परिचय तथा प्रवृत्तियां

प्रगतिबाद के बाद का काल 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया गया। सन् 1943 में अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया तथा लिखा– " ..... संग्रहित कवि प्रयोग को कविता का विषय मानते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी।" अज्ञेय के इस कथन से ही 'प्रयोगवाद– की चर्चा होने लगी।

'दूसरे सप्तक' में अज्ञेय ने इसका खंडन किया व कहा– "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है।" किंतु प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया।

सन् 1947 में 'प्रतीक' के प्रकाशन के समय प्रगतिशील कवियों के दृष्टिकोण में भी बदलाव आने लगे। अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक बनकर आगे आए। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रयोगवाद में रचना का कलात्मक उद्देश्य कभी संदिग्ध नहीं रहता, प्रयोगवाद साहित्य के रूप संबंधी नवीन प्रयोगों पर बल देता है तथा साहित्य के सामाजिक पक्ष की अपेक्षा करता है। यह शुद्ध रूप से एक साहित्यिक काव्य आंदोलन था।

प्रयोगवादी काव्य के समय देश स्वतंत्र हो चुका था। मध्यवर्ग के सम्मुख कोई आदर्श नहीं था। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ा।

व्यक्ति स्वातंत्र्य की मांग जोर पकड़ने लगी। प्रगतिवादी आंदोलन क्षीण होता जा रहा था। प्रयोगवाद नई सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते हैं, वरन् काव्य के कलापक्ष और रूपपक्ष पर भी बल देते हैं। अज्ञेय प्रयोग को दोहरा साधन मानते हैं– एक तो सत्य को जानने का साधन तथा दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को जानने का। अत प्रयोग का संबंध नई विषय–वस्तु की खोज भी है तथा उस विषयवस्तु को प्रेषित करने के ढंग में भी है।

प्रमुख साहित्यकार

तारसप्तक के प्रकाशन के साथ प्रारंभ हुई यह काव्यधारा दूसरा सप्तक तक मान्यता प्राप्त कर सकी। अज्ञेय के अतिरिक्त प्रमुख कवि हैं– प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि।

अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक माना जाता है। इनका प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' है। अन्य प्रमुख रचनाएं हैं– 'हरी घास पर क्षण भर', 'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार'। इन्होंने अपनी रचनाओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा, प्रकृति के प्रति लगाव आदि प्रमुख विशेषताएं हैं।

गिरिजाकुमार माथुर भी प्रमुख कवि रहे। 'मंजीर' इनकी प्रारंभिक रचना है। इनके काव्य की जमीन प्रेम और सौंदर्य है। 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'जो बंध न सका' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं के मुख्य विषय रहे हैं। भारतभूषण अग्रवाल का प्रथम काव्य संग्रह 'छवि के बंधन' है। इसके अतिरिक्त 'जागते रहो', 'मुक्तिमार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'अनुपस्थित लोग', 'एक उठा हुआ हाथ', तथा 'उतना वह सूरज है' आदि इनकी अन्य प्रमुख रचनाएं हैं। इनकी कविताओं में अधिकांशत दर्द की अभिव्यक्ति हुई है।

नरेश मेहता पर आरंभ में प्रगतिवाद का प्रभाव था, किंतु बाद में इनके स्वर बदल गए। प्रकृति–चित्रण इनका प्रिय विषय रहा है। 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान', 'समय देवता', 'उन पाखी! सुनो!!', 'बोलने दो चीड को', 'मेरा समर्पित एकांत' इनकी प्रमुख कृतियां हैं।

शमशेर बहादुर सिंह यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि है, किंतु इनका काव्य सौंदर्यवादी है। इनके काव्य में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। प्रमुख काव्य–कृतियां हैं– 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'चुका भी हूं नहीं मैं' आदि। इनका झुकाव अमूर्त की ओर अधिक है।

मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएं आत्मसंघर्ष का ही प्रतिफलन है, किंतु यह बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित है। ये सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' और 'भूरी–भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' आदि प्रमुख कृतियां हैं।

प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, अनुभव को तथा कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता।

1. **विचारधारा से मुक्ति**– डॉ नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुंचा सकती, यथा–

   कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
   वही हलेगी सदा
   अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम?

2. **सत्य के लिए अन्वेषण**– प्रयोगवादी कवियों की प्रधान विशेषता सत्य के लिए अन्वेषण है। इन कवियों का मत है कि प्रयोगवादी कवि सत्य की खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है, जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है।

3. **व्यक्तिवाद**– प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर बल दिया है। 'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज को व्यक्त किया। इन कवियों में व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह, मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजा है।

4. **यथार्थ दृष्टि**– प्रयोगवादी कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। इन कवियों का यद्यपि जीवनानुभव कम था, किंतु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप में ही व्यक्त हुआ। इन कवियों ने नारियों को सामान्य भावभूमि पर चित्रित किया। इनके प्रकृति चित्रण भी यथार्थ–दृष्टि के परिचायक हैं।

5. **काव्यभाषा छंद और लय**– प्रयोगवाद की भाषा में शब्द प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया गया है। इनकी भाषा सहज व सरल है तथा संप्रेषणीय है। भाषा में गेयता और आलंकारिकता का अभाव है। इन्होंने छंदमुक्त, तुकमुक्त एवं लयमुक्त रचनाएं कीं। अज्ञेय ने काव्य को 'शब्द' माना है। यद्यपि इन कवियों में गेयता है तथापि गीतों में मोहकता का अभाव पाया जाता है।

6. **प्रतीक और बिंब**– इन कवियों ने प्रतीकों को प्रमुखता दी। ये प्रतीकों को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। कविता में प्रतीक साकेतिक अर्थ एवं लाक्षणिक वक्रता के सूचक हैं। प्रयोगवादी कविता बिंब निर्माण की दृष्टि से समृद्ध है। प्रकृति संबंधी बिंब अधिक हैं, यथा–

   एक पीली शाम
   पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
   शांत
   मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल।

मूल्यांकन

प्रयोगवादी कविता एक विलक्षण काव्यधारा है, जिसका हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इन कवियों ने सत्यान्वेषण द्वारा जीवन के यथार्थ को काव्य में उतारा।

1.3.6 स्वातंत्र्योत्तर कविता : परिचय तथा प्रवृत्तियां

प्रत्येक युग में समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं। स्वतंत्रता के परवर्ती युग में परंपरागत सामाजिक मान्यताएं टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा। परंपरागत मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी के मन में वितृष्णा पैदा हुई। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति एवं समाज के प्रति भी आस्था बदली। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष होने लगा। संयुक्त परिवार प्रणाली टूटने लगी। औद्योगीकरण के कारण नगरीय सभ्यता का विकास हुआ। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्य बदल गए।

पराधीन भारत के साहित्यकारों के सम्मुख 'भारत की स्वाधीनता' का ठोस लक्ष्य था लेकिन स्वाधीन भारत के साहित्यकार के सामने एक नहीं कई जटिल चुनौतियां थीं। प्रसिद्ध साहित्यकार यशपाल जैन ने इस संबंध में कहा था कि "विदेशी दासता तो समाप्त हो चुकी है लेकिन व्यवस्थाओं की दासता से भारतवासी मुक्त नहीं हो पाए हैं। जब तक सर्वसाधारण का शोषण बना रहता है तब तक जनगण की स्वतंत्रता मिथ्या है। यहां मात्र अधिकार का हस्तांतरण हुआ है। 'ट्रांसफर ऑफ पावर' और जनगण की स्वतंत्रता में अंतर है।' जनगण की स्वतंत्रता में साहित्यकार के सहायक होने की बात करते हुए यशपाल जी ने कहा कि "समाज के दुःख को साहित्यकार बारीकी से समझें। लिखें, मानवीय दृष्टि से उन्हें समझाकर वे समस्याओं को सुलझाने का मार्ग बनावें, ...जनता का सबसे बड़ा शत्रु अंधविश्वास है। इसे चकनाचूर करने के लिए साहित्यकार अपनी लेखनी का सदुपयोग करें।"

स्वातंत्र्योत्तर कविता 'नई कविता, 'नवगीत' एवं 'समकालीन कविता' आदि रूपों में सामने आई।

नई कविता : प्रतिनिधि रचनाकार एवं साहित्यिक विशेषताएं

प्रयोगवाद का ही विकसित रूप नई कविता है। डॉ. रामविलास शर्मा नई कविता की शुरुआत 'नई कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन 1954 में हुआ था। तीसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद के स्थान पर नई कविता शब्द प्रयोग करना उचित माना है। सन् 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार 'नई कविता' शब्द का प्रयोग किया। 'नई कविता' शब्द 1954 में पत्रिका के प्रकाशन के फलस्वरूप आरंभ हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी एवं समाजवादी लोगों के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों एवं बुद्धिजीवियों पर पड़ा। इस दौर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों ने जन्म लिया। व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नए लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। राष्ट्र का असंतुलित विकास हुआ और राष्ट्रीय एकता एवं बाहरी दबावों की समस्याओं का विस्तार हुआ। नई कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

नई कविता का अभिप्राय

यह विवाद का विषय रहा है कि नई कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नई है और इस काल की कविता को ही नई कविता कहना कहां तक उचित है। यह

विचारणीय विषय है। नई कविता के समर्थक पहले स्वयं को अज्ञेय से जोड़ने में गौरवान्वित होते थे, धीरे-धीरे ये प्रयोगवाद से स्वयं को विशिष्ट बताने लगे तथा नई कविता के प्रणेता बन गए।

नई कविता को परिभाषित करते हुए इन्होंने अनुभूति की अभिव्यक्ति पर बल दिया। धर्मवीर भारती ने नई कविता को पुराने और नए मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नई कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की कविता है। वस्तुतः नई कविता विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को समेटे हुए है।

नई कविता के प्रमुख कवि

नई कविता के कवियों में वैविध्य मिलता है। शमशेर, मुक्तिबोध जैसे कवि जहां मार्क्सवादी थे, वहीं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता प्रयोगवादी। लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती जैसे प्रगतिवाद विरोधी कवि भी थे। नई कविता के प्रमुख कवियों का सूक्ष्म विश्लेषण निम्न है–

धर्मवीर भारती नई कविता के प्रमुख कवि हैं। 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'ठंडा लोहा', 'सात गीत वर्ष', आदि चर्चित कृतियां हैं। इन्होंने मिथकों की नई व्याख्याएं की हैं। रुमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कुंवरनारायण के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'बृहतर जिज्ञासा का काव्य' कहा है। इनकी प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है इसलिए उनकी काव्य–भाषा में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इनकी कृतियां– 'आत्मजयी', 'चक्रव्यूह', 'परिवेश: हम–तुम' में संग्रहीत हैं।

रघुवीर सहाय उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर पड़ा है। इनकी कविताओं में बदलाव का स्वर है तथा वे समकालीन यथार्थ को संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताएं जनपक्षीय हैं। प्रमुख संग्रह है– 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हंसो–हंसो जल्दी हंसो', 'लोग भूल गए हैं' आदि।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता यात्रा में अनेक मोड़ आए हैं। आरंभ में उन पर व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। इनकी कविताओं में निजता व आत्मीयता पाई जाती है। इनकी कविताएं सहज, सरल और सपाट हैं। 'काठ की घंटियां', 'जंगल का दर्द' आदि प्रमुख कृतियां हैं।

केदारनाथ सिंह भी तीसरा सप्तक के कवि हैं। इनकी कविताएं 'अभी बिल्कुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहां से देखो' और 'अकाल में सारस' प्रमुख कृतियां हैं। केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नई कविता की नकारात्मक प्रकृतियों का प्रभाव नहीं है। इनकी कविता में बिंब प्रमुख हैं।

नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां

नई कविता का संबंध पूंजीवादी विकास से है। नई कविता में वस्तुतः दो तरह की धाराएं रही हैं। एक धारा वह जो अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा जो मार्क्सवाद से प्रभावित थी। नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **व्यक्ति–स्वातंत्र्य**– व्यक्ति–स्वातंत्र्य नई कविता की प्रधान विशेषता थी। नई कविता के कवियों ने नए मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। कोई इसे 'लघुमानव' कह रहा था तो कोई 'सहज मानव'। लेकिन यह मानव मध्यवर्ग का ही प्रतिनिधि था। नई कविता में व्यक्ति–विशेष की आशाओं, निराशाओं, आस्थाओं–अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इस काल में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद प्रमुख है।

2. **आस्था और अनास्था**– नई कविता में यह प्रश्न भी उठा है। उनके अनुसार, नई कविता वादों, विचारधाराओं, रूढ़ियों, सामूहिक निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। कुंवरनारायण ने आस्था–अनास्था का प्रश्न उठाया है।

3. **औद्योगिक सभ्यता**– बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी बनाया। इसीलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। कवियों का मत है कि यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएं ही नहीं देता, वह संवेदनशक्ति भी छीन लेता है; यथा–

> अपने ही हथियारों से घबराया मानव
> पत्थर का देव और लोहे का दानव
> यह युग
> अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य।

इन कवियों ने शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया।

4. **अनुभूतिपरकता**– नई कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रधान है। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ अनुभव को अभिव्यक्त करने के नए अंदाज से है। इसे ही वे सौंदर्यानुभूति भी कहते हैं। प्रत्येक कवि के मूल उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौंदर्यानुभूति, सामाजिक यथार्थ से संपृक्ति, कलात्मक क्षमता का हाथ रहता है। क्षणबोध की चर्चा भी कवियों ने प्रमुख रूप से की।

5. **प्रकृति–प्रेम**– प्रकृति संबंधी रचनाएं इन कवियों ने प्रमुख रूप से कीं। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नए कवियों ने भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण किया। इनके काव्य में प्रकृति–चित्रण, समाज निरपेक्ष अधिक है। इन कवियों ने प्रकृति के अनेक बिंब व्यक्त किए हैं। साथ ही कृषक चेतना के भी दर्शन होते हैं।

6. **काव्यभाषा, छंद और लय**– नई कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौंदर्यबोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। इस काल में गद्य–पद्य की भाषा इतनी निकट आ गई कि विभाजन करना कठिन हो गया। कवियों ने बोलचाल के शब्द प्रयोग किए, यथा–

> देवता इन प्रतीकों से कर गए हैं कूच
> कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

कवियों ने मुक्तछंद को अपनाया है जिससे गद्यात्मकता को बढ़ावा मिला। नए कवियों ने 'शब्द की लय' के स्थान पर 'अर्थ–की लय' को प्रधानता दी। संगीत से मुक्त कविता को इन्होंने 'शुद्ध कविता' कहा है।

7. **प्रतीक और बिंब**– नई कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। नए कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। साथ ही जीवन और प्रकृति के विविध रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किए हैं। बिंब–विधान भी इन कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। काव्य–बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुत: नई कविता को उत्कृष्ट रूप देने में संश्लिष्ट काव्य–बिंबों का प्रमुख स्थान है।

मूल्यांकन

वस्तुत: नई कविता प्रयोगवाद का विकास है। व्यक्ति स्वातंत्र्य, वैयक्तिक अनुभूति की समझ, क्षणबोध, मानव की लघुता की महत्ता इस कविता की पहचान है। यह सामाजिक यथार्थ की मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियां थीं।

नवगीत : प्रतिनिधि रचनाकार एवं साहित्यिक विशेषताएं

नवगीत समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा है। इसकी रूपरेखा छठे दशक के उत्तरार्द्ध में तैयार की गई। विषम परिस्थितियों में, कुछ जागरूक रचनाकारों ने नवगीत का उद्‌घोष किया। लोकचेतना और लोकधुनों के संस्पर्श से इन रचनाकारों ने गीतिकाव्य को एक नई गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान की। प्रमुख गीतकार हैं– शंभूनाथसिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, ओम प्रभाकर आदि। नवगीत ने अपना संबंध जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से जोड़ा। जीवन के अनुभवों को गीतों में उतारा गया। आम–आदमी के दु:ख और संघर्ष के गीत गाए गए। लोकगीतों की जीवंतता, सहज संप्रेषणीयता और सरलता को अपनाकर जनवादी नवगीत को नई शक्ति और ऊर्जा प्राप्त हुई; यथा–

'रूप के भाग में चीर
अपने तो भाग, मजदूर के भाग हैं
भाल पै स्याम लकीर। (रमेश रंजक)

काव्यभाषा, प्रतीक और बिंब

इस काल की भाषा सपाट है। कवियों ने सृजनात्मक प्रयोग भी किए हैं। चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सपाटबयानी प्रमुख है। गद्यात्मकता का समावेश है, लय तथा संगीतात्मकता का अभाव पाया जाता है। बिंब एवं प्रतीकों की कवियों ने योजना की है। प्रतीक जीवन से ही लिए गए हैं। बिंबों में जीवन के मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

प्रमुख कवि

समकालीन कविता के प्रमुख कवि हैं– जगदीश चतुर्वेदी, लीलाधर जगूडी, धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, शंभुनाथ सिंह, रमेश रंजक, असद जैदी, इब्बार रब्बी आदि।

मूल्यांकन

इस प्रकार समकालीन कविता विविध चरणों से गुजरी है। सपाटबयानी, बिंबात्मकता, यथेष्ठ का चित्रण, निषेधात्मकता, जनवादी सोच इसकी प्रधान विशेषताएं हैं। यह कविता युवावर्ग

की मानसिकता का प्रतिबिंब है। प्रारंभ में यह अतिकातिकारिता से ग्रस्त थी किंतु बाद में यह संतुलित व संयमित रूप से पाठकों के समक्ष आई।

समकालीन कविता : प्रतिनिधि रचनाकार एवं साहित्यिक विशेषताएं

नई कविता की दोनों धाराओं व्यक्तिवादी–आधुनिकतावादी तथा प्रगतिशीलता का विकास हम समकालीन कविता में देख सकते हैं। हिन्दी में समकालीन कविता जैसी कोई काव्य–प्रवृत्ति नहीं है। नई कविता के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यांदोलनों काव्यधाराओं और काव्य प्रवृत्तियों को ही समकालीन कविता कहा गया है।

वस्तुत साठ के बाद के दशक की कविता जिसे साठोत्तरी कविता नाम दिया गया है कुछ अन्य नाम अकविता, विद्रोही कविता, नूतन कविता, सहज कविता, विचार कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता आदि विभिन्न नामों के साथ सातवें दशक में युवा कवि नए तेवर और नई भंगिमा के साथ उभर रहे थे परंतु इनमें से एक भी नाम और आंदोलन हिन्दी काव्य–परंपरा में स्थायी महत्व नहीं प्राप्त कर सका। सभी आंदोलन क्षणजीवी सिद्ध हुए।

भारत की स्वतंत्रता के बाद जनता में जो उमंग व उत्साह था वह धूल–धूसरित होने लगा। बेरोजगारी, भुखमरी, सूखा, बाढ़ आदि ने लोगों के कष्टों को बढ़ाया। वामपंथी तथा प्रगतिशील आंदोलन भी अंतर्विरोधों के कारण बिखर गया। अतः युवा वर्ग निराशावाद में डूब गया। ऐसे में नकारने के विद्रोही तेवर अपनाते हुए हर चीज को और अपने आपको भी निरर्थक मानने लगे।

इस बीच 1962 के भारत–चीन युद्ध एवं 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध ने स्थितियों को और भी बदतर बना दिया। नक्सलवादी आंदोलन भी प्रारंभ हो गया। धीरे–धीरे परिवर्तन की आकांक्षा ने जन्म लिया, जिसने कविता को नया प्रेरणा संसार दिया। ऐसे में पुनः 1975 के आपातकाल के बाद की स्थिति भयावह हो गई। जिससे साहित्यकार सकते में आ गए। राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियां 1977 से बदलने लगीं तथा जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, राष्ट्रीय एकता व अखंडता के प्रश्न उठने लगे। समकालीन कविता में मुख्यतः साठोत्तरी कविता, प्रगतिशील–जनवादी कविता एवं नवगीत परंपरा नामक काव्यधाराएं भी चली। समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तिया निम्न है–

1. **विचारों से विदाई**– राजनीतिक विचारधारा से इन कवियों का कोई सरोकार नहीं है। इनके लिए व्यक्ति सत्ता तथा अनुभूत सत्य ही काव्य का एवं जीवन का दर्शन है। साथ ही सामाजिक आदर्श भी बौद्धिक चेतना से अनुप्राणित है, यथा–

> कुछ लोग मूर्तियां बनाकर / फिर
> बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड़यंत्र की)
> कुछ और लोग / सारा समय
> कसमें खायेंगे लोकतंत्र की।

2. **व्यर्थता-बोध**– विचारहीन विद्रोह एवं पराजय-भावना ही कवियों को व्यर्थता बोध की ओर ले गई। यथार्थ के प्रति कुंठा ने इन्हें असहाय बनाया तथा इसे इन कवियों ने नियति मान लिया। यहां विरोध का स्वर व्यंग्य नहीं, ऊब है, यथा–

चारों तरफ मुर्दानी है
भीड है और कूडा है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है।

3. **अकेलेपन का भाव**– वर्तमान में मनुष्य यांत्रिक हो गया है, जिससे वह स्वयं को 'अकेला' व 'अजनबी' महसूस करने लगा है। महानगरों की भीड में भी वह स्वयं को इकाई के रूप में देखता है, पाता है।

4. **नारी के प्रति पतनोन्मुख दृष्टिकोण**– नारी के प्रति सम्मान का अभाव देखा गया है। नारी को मात्र 'वस्तु' के रूप में देखा एवं व्यक्त किया गया। अगर नारी किसी भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए आई भी तो केवल विकृत रूप में। वह सामूहिक उपभोग की वस्तु के रूप में व्यक्त हुई।

5. **निषेधात्मकता**– ये कवि भावुकता, आदर्शवादिता, प्रेम, नैतिक मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। मूल्यों के प्रति यह संदेहवाद और निषेध जीवन में भी व्याप्त दिखाई देता है।

6. **प्रगतिशील जनवादी विचारधारा**– समकालीन कविता के कुछ कवि यथा शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि कवियों की कविताओं पर उक्त व्यक्तिवादी एवं निषेधात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव नहीं पडा है। ये प्रगतिशील जनवादी कवि थे इनमें धूमिल, लीलाधर जगूडी, मंगलेश डबराल को भी सम्मिलित किया जा सकता है। ये आशावादी विचारधारा के कवि रहे हैं।

1.4 सारांश

इतिहास वह सामाजिक शास्त्र है जो हमें भूतकाल के लोगों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का परिचय कराता है। यह वर्णन क्रमबद्ध वैज्ञानिक विवेचन होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास में घटनाओं, परिस्थितियों या क्रियाकलापों और रचनाओं की व्याख्या कालक्रमानुसार होती है, किंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यदि हम किसी भी विषय की घटनाओं या रचनाओं का विवरण कालक्रमानुसार कर दें तो वह 'इतिहास' की संज्ञा का अधिकारी हो जाएगा। वस्तुत: इतिहास का लक्ष्य घटनाओं या रचनाओं का विवरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं होता, अपितु वह उनमें घटित या रचित होने के कारणों एवं आधारभूत तथ्यों की खोज करता है।

इतिहास केवल अतीत ही नहीं है, वरन वर्तमान का पुनर्मूल्यांकन भी है। यह भविष्य की कल्पना भी है। इस प्रकार, यह वर्तमान और भविष्य का सेतु भी है। दूसरे शब्दों में, यदि

यह कहें कि इतिहास मात्र बीते दिनों का लेखा–जोखा नहीं, अपितु वर्तमान का संवाद भी होता है, इस प्रकार सदैव प्रासंगिकता सिद्ध करता है।

साहित्य का इतिहास अतीत में लिखे गए साहित्य या साहित्यकार का ब्यौरा मात्र नहीं है। जिस प्रकार इतिहास आज राजाओं के जीवन–चरित्र एवं राजनीतिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, उसी प्रकार साहित्य का इतिहास मात्र रचनाओं और रचयिताओं का परिचय–ग्रंथ नहीं है। किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक परिस्थितियों का विवेचन–विश्लेषण जरूरी है। इसका कारण यह है कि किसी भी देश का साहित्य उस देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रतिबिंबित करता है।

साहित्य का इतिहास मानव चिंतनधारा के विकासक्रम को निरूपित करने के साथ–साथ अभिव्यंजना–शिल्प के क्रमिक विकास को भी दर्शाता है। उसमें युगविशेष के व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है। जहां एक ओर जातीय जीवन की प्रामाणिक झांकी देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक मूल्यों का मूल्यांकन भी होता है। यह एक ऐसी विधा है, जिसमें शोध, इतिहास, समीक्षा सबके तत्व सम्मिलित होते हैं।

किसी भी साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को कई चरणों से गुजरना पड़ता है। इसमें स्रोत–सामग्री का संकलन प्रमुख है। तत्पश्चात वह विशिष्ट रचनाकारों और रचनाओं की पहचान करता है। परंपरा के वैज्ञानिक अनुशीलन के उपरांत काल–विभाजन व नामकरण की समस्या पर विचार करता है। इस हेतु वह विभिन्न प्रवृत्तियों का अवलोकन व विश्लेषण करता है। तदुपरांत वह युगविशेष और प्रवृत्ति के अंतर्संबंध का विश्लेषण करते हुए वर्तमान संदर्भ में उनका मूल्यांकन करता है।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के लिए रुझान उन्नीसवीं शती के आरंभ से हुआ। यद्यपि इससे पूर्व भी यदा–कदा रचनाकारों के जीवनवृत्त व कृतित्व का परिचय देने की परंपरा रही, किंतु इसे पूरी तरह इतिहास–लेखन की संज्ञा नहीं दी गई। चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ वैष्णवन की वार्ता भक्तमाल, कविमाला, कालिदास–हजारा आदि ऐसे ही ग्रंथ हैं।

इतिहास को स्पष्ट रूप से समझने के लिए काल–विभाजन और नामकरण आवश्यक है। साहित्येतिहास भी इसका अपवाद नहीं है। किसी भी चीज का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है। इसके बिना दिशाहीनता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वस्तुतः काल–विभाजन से साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों, विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ों का पता चलता है।

काल–विभाजन एवं नामकरण करने की आवश्यकता इस कारण से भी है, क्योंकि साहित्य सतत प्रवाहमान है तथा प्रत्येक समय की परिस्थितियां बदलती रहती हैं, अतः उन परिस्थितियों के अनुसार नामकरण आवश्यक है। इसी क्रम में उस बदलाव को काल में विभक्त किया जाना आवश्यक होता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी द्वारा दिए गए 'वीरगाथाकाल' को 'आदिकाल' ही कहा। डॉ. रामबहोरी शुक्ल एवं डॉ. भगीरथ प्रसाद मिश्र का 'हिन्दी साहित्य का उद्भव

और विकास' ग्रंथ भी प्रकाश में आया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने 'हिन्दी–साहित्य के अतीत' में भी रीतिकाल के नामकरण एवं अंतर्विभाजन के क्षेत्र में नया प्रयास करते हुए भी शेष बातों में पूर्ववर्ती परंपरा का निर्वाह किया है। राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को 'सिद्ध सामंत युग' की संज्ञा दी।

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है, किंतु इस काल में आधुनिक हिन्दी कविता बहुमुखी होकर विकसित हुई और इसी काल के द्वितीय चरण में आकर कविता में भाषाई क्रांति आई। अब कविता खड़ी बोली हिन्दी में रची जाने लगी। इस प्रकार हिन्दी में पहली बार आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार से हुआ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। सामान्यतया इसका प्रारंभ संवत 1900 अर्थात 1843 ई. से माना जाता है। कुछ विद्वानों ने 1857 से नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है– "सामान्यतया रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है, नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है, किंतु साहित्य–क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेंदु के रचनाकाल से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किंतु उसे भारतेंदु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"

रीतिकाल की शृंगारिक कविता के बाद हिन्दी साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। साहित्य में ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। भारतेंदु युग की परिस्थितियां लगभग वही हैं, जो आधुनिक युग की रही हैं। हिन्दी कविता का वर्तमान युग भारतेंदु युग से ही प्रारंभ होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के आगमन से हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई राह मिली। भाषा का शिष्ट और सामान्य रूप लाने का श्रेय भारतेंदु को ही है। अब तक भक्ति व शृंगार संबंधी रचनाएं हो रही थीं। भारतेंदु ने हिन्दी साहित्य को जन जीवन से जोड़ने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल नए–नए विषयों को साहित्य में स्थान दिया। भारतेंदु ने भाषा की शक्ति को पहचाना और सबल शब्दों में घोषणा की– निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

आधुनिक काल का द्वितीय युग 'द्विवेदी युग' कहलाता है। भाषा साहित्य के क्षेत्र में अराजकता एवं उच्छृंखलता का वातावरण बन गया। ऐसे में महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन होता है। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी को अराजकता के घेरे से बाहर निकाला। द्विवेदी युग की परिस्थितियां भी लगभग भारतेंदु युग जैसी ही थीं। भारत अंग्रेजों के चंगुल में फंस चुका था। 'युगांतर' और 'संध्या' पत्रिका द्वारा जन जागरण का कार्य किया गया। 'वन्देमातरम्' के नारों द्वारा जनता में जोश और उमंग को बुलंद किया गया। 'वन्देमातरम्' शब्द पर नियंत्रण लगा कर जनता की आवाज को बंद करने का षड्यंत्र रचा। इस समय गांधीवादी विचारधारा समस्त राष्ट्र में व्याप्त थी।

आधुनिक काल का तीसरा युग 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। हिन्दी काव्यधारा के विकास में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत व महादेवी वर्मा जैसे प्रमुख साहित्यकार हुए। छायावाद ने न केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर वरन् काव्य-भाषा और संरचना-शिल्प की दृष्टि से भी हिन्दी कविता को समृद्ध किया है और उसे उत्कर्षता प्रदान की है। इस काल में साहित्य, संगीत एवं कला तीनों का समन्वय उत्पन्न हुआ। नई उपमा, नए प्रतीक, नए अलंकार प्रयुक्त हुए। काव्य के क्षेत्र में आए इस अरुणोदय को पहले तो कुछ साहित्याचार्यों ने हल्केपन से 'छायावादी काव्य' नाम से अभिहित किया। किंतु बाद में साहित्य-सुधियों द्वारा यही नाम इस अभिनव अरुणोदयी काव्यधारा का अभिधान बन गया।

छायावाद के बाद एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का उदय हुआ। प्रगतिवाद का उदय 1936 में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना से माना जाता है। व्यक्ति की मुक्ति का जो लक्ष्य छायावादी कवियों के सामने था, उसका स्थान समाज और राष्ट्र की मुक्ति ने ले लिया।

प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिन्दी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि भी इससे अछूते नहीं रहे। इसके अलावा रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री भी इसी काव्यधारा की देन थे।

प्रगतिवाद के बाद का काल 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया गया। सन् 1943 में अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया तथा लिखा– " ..... संग्रहित कवि प्रयोग को कविता का विषय मानते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी।" अज्ञेय के इस कथन से ही 'प्रयोगवाद' की चर्चा होने लगी।

प्रयोगवादी काव्य के समय देश स्वतंत्र हो चुका था। मध्यवर्ग के सम्मुख कोई आदर्श नहीं था। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ा। व्यक्ति स्वातंत्र्य की मांग जोर पकड़ने लगी। प्रगतिवादी आंदोलन क्षीण होता जा रहा था। प्रयोगवाद नई सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते हैं, वरन् काव्य के कलापक्ष और रूपपक्ष पर भी बल देते हैं। अज्ञेय प्रयोग को दोहरा साधन मानते हैं– एक तो सत्य को जानने का साधन तथा दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को जानने का। अतः प्रयोग का संबंध नई विषय-वस्तु की खोज भी है तथा उस विषयवस्तु को प्रेषित करने के ढंग में भी है।

प्रत्येक युग में समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं। स्वतंत्रता के परवर्ती युग में परंपरागत सामाजिक मान्यताएं टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा। परंपरागत मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी के मन में वितृष्णा पैदा हुई। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति एवं समाज के प्रति भी आस्था बदली। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष होने लगा। संयुक्त

परिवार प्रणाली टूटने लगी। औद्योगीकरण के कारण नगरीय सभ्यता का विकास हुआ। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्य बदल गए।

नई कविता की दोनों धाराओं व्यक्तिवादी–आधुनिकतावादी तथा प्रगतिशीलता का विकास हम समकालीन कविता में देख सकते है। हिन्दी में समकालीन कविता जैसी कोई काव्य–प्रवृत्ति नहीं है। नई कविता के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यांदोलनों, काव्यधाराओं और काव्य प्रवृत्तियों को ही समकालीन कविता कहा गया है।

1.5 मुख्य शब्दावली

- **अतीत** : भविष्य
- **यथार्थ** : सच्चाई।
- **अभिप्राय** : तात्पर्य, अर्थ।
- **प्रतिबिंब** : आईना, दर्पण।
- **आयाम** : चरण।
- **सामंजस्य** : तालमेल।
- **अनुसंधान** : खोज।
- **प्रौढ़** : वृद्ध।
- **प्रादुर्भाव** : आरंभ, उदय।
- **दृष्टिगोचर** : दिखाई देना।
- **प्रतीक** : चिह्न।
- **प्राचीन** : पुरानी।
- **विभाजन** : बंटवारा।
- **बेड़ी** : जंजीर।

1.6 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सातवीं सदी से
2. 'सिद्ध सामंत युग' की
3. (क) गलत, (ख) सही
4. भारतेन्दु युग से
5. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था'
6. (क) सही (ख) गलत

1.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. साहित्येतिहास लेखन के विविध पक्ष कौन–से हैं?
2. इतिहास से क्या तात्पर्य है?
3. हिन्दी साहित्य में काल–विभाजन का आधार क्या है?
4. भारतेन्दु युग की प्रमुख विशेषताएं कौन–सी हैं?
5. द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकार कौन–कौन से हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्वपीठिका पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन, सीमा निर्धारण एवं नामकरण की व्याख्या कीजिए।
3. भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग का परिचय तथा प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
4. छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
5. स्वातंत्र्योत्तर कविता के परिचय एवं प्रवृत्तियों की समीक्षा कीजिए।

1.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- पांडेय मैनेजर, *साहित्य और इतिहास दृष्टि*, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली।
- शर्मा, नलिन विलोचन, *साहित्य का इतिहास–दर्शन*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
- गणपति चंद्र गुप्त, *हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

2.4 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : सामान्य परिचय

निराला आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। निराला का जन्म बसंत पंचमी के दिन महिषादल स्टेट मेदनीपुर, बंगाल में सन् 1896 में हुआ। इनके बचपन का नाम सुर्जकुमार था। निराला के पिता पं. रामसहाय मूलतः उन्नाव जिले के गढ़कोला गांव के थे, जो बंगाल के महिषादल स्टेट में नौकरी करते हुए वहीं बस गये थे। निराला की प्रारम्भिक शिक्षा महिषादल में ही हुई। निराला जब तीन वर्ष के थे तभी उनकी माता का निधन हो गया। बाल्यकाल में ही बंगला भाषा में इनकी विशेष दक्षता लोगों को आकर्षित करने लगी थी। बहुत कम उम्र में ही वे बंगला भाषा में कविता लिखने लगे थे। समय के साथ निराला की रुचि दार्शनिक विचारों की तरफ भी हुई। निराला का विवाह मनोहरा देवी से हुआ, जो गायन में अत्यधिक निपुण एवं हिन्दी साहित्य में विशेष अनुराग रखने वाली थीं। निराला ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनके भीतर हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति प्रेम पत्नी मनोहरा देवी के कारण ही हुआ।

निराला के जीवन की दिशा को तय करने में आर्थिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक आपदाओं की बड़ी भूमिका रही है। लगभग 15–16 वर्ष की उम्र से ही निराला को इन विपत्तियों ने घेर लिया था। पहले पिता का असामयिक निधन हुआ, मजबूरी में उन्हें महिषादल स्टेट में छोटी नौकरी करनी पड़ी। उसी बीच पत्नी की बीमारी की खबर पाकर निराला को नौकरी से वापस आना पड़ा। उस समय उनकी पत्नी मनोहरा देवी अपने मायके मे थीं। निराला जब वहां पहुंचे तब उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। उस समय इन्फ्लुएंजा नामक संक्रामक बीमारी चारों तरफ फैली हुई थी। जिसमें बहुत से लोगों की जान चली गयी थी। निराला ससुराल से अपने घर आये। घर पर उनके बड़े भाई, दादा, भाभी, भाभी की छोटी बच्ची का देहान्त भी उसी महामारी में हो गया। इन घटनाओं ने निराला को बुरी तरह से तोड़ दिया। परिवार की जिम्मेदारी उन पर आ गयी। लगभग 22 वर्ष की उम्र में विधुर होने पर, रिश्तेदारों के प्रबल आग्रह के बाद भी निराला ने दूसरा विवाह नहीं किया। अब उनके जीवन की एक मात्र आधार उनकी पुत्री सरोज ही थी।

निराला परिवार, समाज और साहित्य सभी मोर्चों पर एक साथ संघर्ष करते रहे। जीवन संघर्षों ने पीड़ा तो बहुत दी किन्तु उनसे लड़ते हुए, उनका सामना करते हुए एक नये निराला का उदय हो रहा था। जो अदम्य साहस, विराट पौरुष और ओजस्वी व्यक्तित्व

बाला था। एक तरह से दर्द ही दवा हो गयी थी। किन्तु विपत्तियां आती रहीं। एकमात्र पुत्री सरोज का 19 वर्ष की उम्र में दुखद निधन हो गया। जिसने निराला को लगभग विरक्त कर दिया। किन्तु यह अपराजेय कवि इन संकटों से टकराता रहा और पहले से अधिक ताकत के साथ खड़ा होता रहा। पुत्री के निधन के बाद निराला कहीं एक जगह स्थिर होकर नहीं रह पाते। लखनऊ, सीतापुर, बनारस, इलाहाबाद जैसे स्थानों पर भटकते रहे। सन् 1950 के आस-पास वे इलाहाबाद के दारागंज में स्थाई रूप से रहने लगे। वहीं पर 15 अक्टूबर, 1961 को निराला का निधन हुआ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाएं

काव्य संग्रह– अनामिका, परिमल, गीतिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, अपरा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत-गूंज, सांध्यकाकली।

लम्बी कविताएं– राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, सरोज स्मृति।

उपन्यास– अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

कहानी संग्रह– लिली, सखी, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार, देवी।

निबंध संग्रह– प्रबंध-पद्य, चाबुक, प्रबंध प्रतिमा, प्रबंध परिचय।

आलोचना– पंत और पल्लव, रवीन्द्र कविता कानन।

नाटक– शकुंतला, उषा अनिरुद्ध।

जीवनी– ध्रुव, भीष्म, प्रहलाद, राणा प्रताप।

2.4.1 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : पाठ्यांश – तोड़ती पत्थर, भारति! जय विजय करे!

1. तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर–
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार :
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

शब्दार्थ : तले– नीचे, श्याम– सांवला, नत नयन– झुकी हुई आखें, कर्म–रत– कर्म में लीन, गुरु– भारी, तरु–मालिका– वृक्षों की कतार, अट्टालिका– महल, विशाल भवन, प्राकार– चहारदीवारी, घेरा

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां हिन्दी के महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता 'तोड़ती पत्थर' से ली गई हैं। इस कविता की रचना निराला ने सन 1936 में की थी। इस कविता में कवि सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती एक स्त्री की यातना की मार्मिक प्रस्तुति के द्वारा समाज में विद्यमान आर्थिक विषमता पर प्रहार करता है।

प्रसंग : गुलाम भारत की राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नगरी इलाहाबाद की एक सड़क के किनारे (जो संभवतः जवाहर लाल नेहरू के घर आनन्द भवन के सामने की सड़क थी) बैठ कर पत्थर तोड़ती एक युवती की मनोदशा और देह–दशा का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि इलाहाबाद के रास्ते पर मैंने एक मजदूर स्त्री को पत्थर तोड़ते हुए देखा है। यहां इलाहाबाद नगर का उल्लेख सोच समझकर किया गया है। यह नगर आजादी के पहले भारत की राजनीतिक दिशा को निर्धारित कर रहा था। तत्कालीन राजनीतिज्ञ समस्त भारत को शोषण मुक्त करने का दावा कर रहे थे, जबकि विडम्बना यह थी कि उनके ठीक सामने एक स्त्री पत्थर तोड़ रही है और उसकी ओर उनका ध्यान तक नहीं जाता। औरत संसार की सबसे कोमल प्राणी है और वह जो काम कर रही है वह संसार का सबसे अधिक मुश्किल काम है। वह स्त्री ईंट न तोड़कर पत्थर तोड़ रही है। यह तथ्य उसकी पीड़ा को और अधिक कारुणिक बना देता है। कविता की अगली पंक्ति एक नकार के साथ शुरू होती है। 'कोई न छायादार' के माध्यम से कवि उस स्त्री की विवशता और पीड़ा की प्रभावी अभिव्यक्ति करता है। वह कहता है कि वह अपनी मजबूरियों की वजह से सड़क के किनारे एक ऐसी जगह पर बैठना स्वीकार करती है जहां कोई भी छायादार पेड़ नहीं है। इस वर्णन के साथ ही अचानक कवि का ध्यान उस स्त्री के सांवले शरीर की ओर जाता है और वह कहता है कि उस स्त्री का शरीर सांवला है, वह युवती है और उसके शरीर में एक कसाव है। वह अपनी आंखें झुका कर पत्थर तोड़ रही है लेकिन उसका मन अपने प्रिय कर्म अर्थात अपने परिवार में लगा हुआ है। निराला स्त्री की युवावस्था की सूचना के साथ यह कहना चाहते हैं कि इस उम्र में उसका जीवन किसी परिवार के भरण–पोषण और पति–पुत्र के साहचर्य में गुजरना चाहिए जबकि वह पत्थर तोड़ने के लिए अभिशप्त है। कवि आगे कहता है कि वह स्त्री एक भारी हथौड़ा लेकर पत्थर पर बार–बार प्रहार कर रही है। पत्थर पर बार–बार किए जाने वाले इस प्रहार में केवल उसके पत्थर तोड़ने की कार्य की सूचना मात्र नहीं बल्कि इसके माध्यम से उसके भीतर अपनी स्थिति को लेकर पनप रहे आक्रोश की व्यंजना भी है। कविता की अगली पंक्ति स्त्री के मन के इस आक्रोश को नई ऊंचाई प्रदान करता है। इस पंक्ति में कवि कहता है कि वह स्त्री जहां बैठकर पत्थर तोड़ रही उसके ठीक सामने ऊंची–ऊंची दीवारों के भीतर वृक्षों की कतारों से सुसज्जित एक आलीशान भवन खड़ा है। यह भवन संभवतः 'आनन्द भवन' है, जहां से उस समय आजादी की लड़ाई संचालित हो रही थी। एक तरफ एक पत्थर तोड़ने वाली स्त्री है जिसके बैठने के लिए कोई छायादार पेड़ नहीं है दूसरी तरफ एक निर्जीव भवन है जो पेड़ों की कतार

की छाया का आनन्द ले रहा है। एक तरफ एक स्त्री सड़क के किनारे बैठी है, उसे किसी प्रकार की सुरक्षा उपलब्ध नहीं है और दूसरी तरफ एक भवन बड़ी–बड़ी दीवारों के भीतर सुरक्षित है। इस विडम्बना के सृजन के द्वारा कवि इन अंतिम पंक्तियों में उस स्त्री की पीड़ा की घनीभूत व्यंजना करता है। इस विषमता का बोध उस स्त्री के भीतर भी है, यही कारण है कि उस स्त्री का भारी हथौड़ा जहां एक ओर पत्थर पर पड़ता है वहीं लेखक की विशिष्ट वर्णन शैली की वजह से उसकी चोट उस भवन और उसके भीतर रहने वाले प्राणियों को भी लगती है।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गई,
प्राय: हुई दुपहर–
वह तोड़ती पत्थर।

शब्दार्थ : दिवा– दिन, लू– गर्मी के दिन में चलने वाली गर्म हवा, भू– पृथ्वी, गर्द– धूल, चिनगी– चिंगारी, दुपहर– दोपहर

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां हिन्दी के महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता 'तोड़ती पत्थर' से ली गई हैं। इस कविता की रचना निराला ने सन् 1936 में की थी। इस कविता में कवि सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती एक स्त्री की यातना की मार्मिक प्रस्तुति के द्वारा समाज में विद्यमान आर्थिक विषमता पर प्रहार करता है।

प्रसंग : इन पंक्तियों के द्वारा कवि गर्मी के दिन में बदलते मौसम के द्वारा पत्थर तोड़ती स्त्री के मन में पनप रहे आक्रोश की व्यंजना करता है।

व्याख्या : कवि निराला बताते हैं कि गर्मियों के दिन थे और धूप लगातार तेज हो रही थी। दिन गर्मी की अधिकता से जलता हुआ मालूम पड़ता था। दिन को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वह क्रोध के मारे तमतमा रही हो। इसी बीच पृथ्वी को झुलसाने वाली लू चलने लगी और पूरी पृथ्वी रुई के समान जलने लगी। पृथ्वी पर पड़े कंकड़ इस भयावह गर्मी की वजह से गर्म हो गये। और लू के कारण चलने वाली हवाओं ने धूल के कणों को चिंगारियों में बदल दिया। इस प्रकार धीरे–धीरे दोपहर हुई। 'प्राय:' शब्द के द्वारा कवि गर्मी की लम्बी दोपहर के धीरे–धीरे बीतने की ओर इशारा कर रहा है और अंतिम पंक्ति के साथ इसे जोड़ते हुए कहता है कि इस भयानक दोपहर में भी वह स्त्री पत्थर तोड़ती रही।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार,
देखकर कोई नहीं,

देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा–
मैं तोड़ती पत्थर।'

शब्दार्थ : छिन्नतार– जिसके ध्यान का तार टूट गया हो, सितार– एक वाद्ययंत्र, सुघर– सुंदर, सीकर– पसीना

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां हिन्दी के महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता 'तोड़ती पत्थर' से ली गई हैं। इस कविता की रचना निराला ने सन् 1936 में की थी। इस कविता में कवि सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती एक स्त्री की यातना की मार्मिक प्रस्तुति के द्वारा समाज में विद्यमान आर्थिक विषमता पर प्रहार करता है।

प्रसंग : यह कविता की अंतिम पंक्तियां हैं। इन पंक्तियों में कवि और स्त्री के बीच घटे मौन संवाद की सुंदर व्यंजना है। 'वह तोड़ती पत्थर' से शुरू हुई कविता 'मैं तोड़ती पत्थर' पर आकर समाप्त होती है। रचना प्रक्रिया के क्रम में कवि और काव्य–विषय के बीच की समाप्त होती दूरी की ओर भी इन पंक्तियों में संकेत किया गया है।

व्याख्या : कवि कह रहा है कि पत्थर तोड़ती हुई वह स्त्री अपने काम से उबकर थकान मिटाने के लिए अपनी गर्दन उठाती है और आसपास की चीजों को देखते हुए मेरी तरफ एक बार देखती है, और फिर उस आलीशान भवन की ओर उखड़ी हुई दृष्टि से देखती है। यहां कवि उसके देखने की अलग–अलग स्थितियों का बेहद सूक्ष्म वर्णन करता है। 'देखते देखा' के माध्यम से वह कहता है कि उसने आसपास की चीजों को सरसरी निगाह से देखा, 'मुझे तो एक बार' के द्वारा वह कहना चाहता है कि मेरी ओर गहरी दृष्टि से देखा और 'छिन्नतार' से वह भवन के प्रति उसकी उपेक्षित निगाह की ओर संकेत करता है। कवि की ओर स्त्री ने जिस तरह से देखा था उसके विषय में कवि कहता है कि उस नजर में इतनी असहाय और मजबूरी प्रकट हो रही थी जैसे किसी व्यक्ति को मारा तो गया हो पर उसे रोने नहीं दिया गया हो। इस नहीं रोने में जहां उसकी मजबूरी का पता चलता है वहीं उसकी दृढ़ता का भी पता चलता है। उसकी नजर कह रही थी कि चाहे जितनी मुश्किल हो लेकिन उसको बिना रोए ही सहन करूंगी। स्त्री की इस मनोदशा को अगली पंक्तियों में विस्तार देते हुए कवि कहता है कि उसकी नजर ने मेरे भीतर सितार से पैदा होने वाली ऐसी झंकृति पैदा की जैसी झंकार अब के पहले मैंने कभी नहीं सुनी थी। यह झंकृति ऐसे ही सितार से निकल सकती है जिसके तार अच्छी तरह सजे हुए हों। यह झंकार कवि के व्यक्तित्व में एक बदलाव लाती है। वह सामाजिक विषमता को देखने की एक नई दृष्टि प्राप्त करती है। इस क्रम में अचानक वह सुंदर स्त्री एक क्षण के लिए कांप उठती है और उसके

माथे से पसीने की बूंदें ढुलक जाती हैं, शायद उसे अपने काम से विचलन का अहसास होता है। उसके इस कंपन में एक भय है कि कहीं काम के इस विचलन की वजह से उसका मालिक उसे काम से न निकाल दे। एक ऐसे काम के चले जाने का भयानक भय उसके भीतर विद्यमान है जो उसकी प्रकृति के बिल्कुल अनुरूप नहीं है। यहां आकर उस स्त्री की विवशता का वर्णन अपने चरम पर पहुंच जाता है, जिसकी समाप्ति कवि कविता की अंतिम पंक्तियों में बेहद सधे अंदाज में करता है। अंत में कवि कहता है कि अपने काम से विचलन का अहसास जैसे ही उसे होता है वह तुरंत अपने काम में लीन हो जाती है। जिस तल्लीनता से वह काम में लीन होती है उससे कवि को ऐसा लगता जैसे वह कह रही हो कि, आप चाहे मेरे प्रति जितनी भी सहानुभूति रखें मेरी अवस्था यही रहेगी कि मैं पत्थर तोड़ती रहूंगी। अंत का 'मैं तोड़ती पत्थर' कवि सहित तमाम पाठक वर्ग को एक चुनौती भी प्रस्तुत करता है कि एक स्त्री पत्थर तोड़ रही है और हम उसके लिए कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।

2. भारति! जय विजय करे

भारति, जय, विजय करे
कनक–शस्य–कमलधरे!
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर–जल
धोता–शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु–अर्थ–भरे।

शब्दार्थ : भारति– भारतमाता, कनक– सोना, शस्य– कोमल घास, प्रशंसनीय, पद– पैर, शत– सैकड़ों, गर्जितोर्मि– गरजती हुई लहरें, शुचि– पवित्र, युगल– दो, स्तव– प्रशंसा, स्तुति

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रवादी चेतना से ओतप्रोत छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'भारति! जय विजय करे' से ली गई है। यह कविता निराला के काव्यसंग्रह 'गीतिका' में संकलित है। पहली बार इसका प्रकाशन 'माधुरी' पत्रिका के फरवरी, 1936 अंक में हुआ था। प्रस्तुत कविता में निराला श्रीधर पाठक से राष्ट्र–वंदना की चली आ रही परंपरा का पालन करते हुए भारतभूमि की वंदना की है।

प्रसंग : कविता के इस आरंभिक अंश में निराला ने भारतवर्ष के भौगोलिक वैभव का वर्णन चित्रात्मक शैली में किया है। यह कविता बारह मात्राओं वाले लीला नामक छोटे छंद में रची गई है।

व्याख्या : कवि भारतमाता की जयकार करते हुए कहता है कि यह विजय को धारण करने वाली माता है। भारत भूमि वीरों एवं विजयी लोगों की भूमि है। कवि भारतमाता की कल्पना लक्ष्मी के रूप में करते हुए कहता है कि जिस प्रकार लक्ष्मी के हाथों में कमल का फूल होता है वैसे ही भारतमाता के हाथों में सोने जैसी पकी हुई बालियां हैं। खेतों में धान एवं गेहूं की पकी हुई बालियां दूर से सोने जैसी लगती हैं। प्राचीन काल में भारत का वैभव उसकी उपजाऊ जमीन और बेशुमार पैदावार की वजह से था। उसको याद करते हुए कवि

भारतमाता की तुलना लक्ष्मी से कर रहा है और इसके द्वारा भारत के प्राचीन वैभव की याद दिला रहा है।

आगे की पंक्तियों में भारतमाता का नख–शिख वर्णन किया गया है। सन् 36 में भारतभूमि की परिकल्पना में श्रीलंका भी शामिल था। कवि ने यहां श्रीलंका की कल्पना सैकड़ों पत्तों वाले एक कमल के रूप में की है। भारतमाता के चरणों में सैकड़ों पत्तों वाले कमल के समान लंका अवस्थित है। इसको देखकर ऐसा लगता है जैसे भारतमाता श्रीलंका रूपी कमल के ऊपर खड़ी हैं। यह कमल रूपी लंका विशाल समुद्र के ऊपर तैर रही है। इस समुद्र के जल में ऊंची–ऊंची गरजती हुई लहरें उठ रही हैं। समुद्र की गरजती–उछलती हुई लहरों को देखकर कवि कल्पना कर रहा है कि कोई अज्ञात शक्ति भारतमाता के दोनों पवित्र चरणों को सागर के जल द्वारा धो रही है और साथ ही अनेकानेक अर्थों से भरे मंत्रों द्वारा उनकी प्रार्थना भी कर रहा है। यहां कवि सागर की उठती लहरों में वंदना के स्वर सुन रहा है और सागर में उठती लहरों को किसी अज्ञात शक्ति द्वारा भारतमाता के चरणों को धोने के प्रयास के रूप में देख रहा है।

विशेष : इन पंक्तियों की शब्द–योजना और लय–योजना लाजवाब है। तीसरी और चौथी पंक्ति में 'ल' वर्ण के द्वारा मोहक अनुप्रास की योजना की गई है। 'ध' और 'श' जैसी महाप्राण ध्वनियों द्वारा ओज भाव का सृजन किया गया है।

तरु–तृण–वन–लता वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल–कण
धवल धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम–तुषार
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएं उदार,
शतमुख–शतरव–मुखरे!

शब्दार्थ : तरु– पेड़, तृण– घास, वसन– वस्त्र, सुमन– फूल, धवल– सफेद, निर्मल, शुभ्र– श्वेत, हिम–तुषार– बर्फ की फुहारें, प्रणव– ईश्वरीय ध्वनि, ओंकार– ओम की पवित्र ध्वनि, शत– सौ, रव– ध्वनि, मुखरे– उच्चरित होना।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रवादी चेतना से ओतप्रोत छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'भारति! जय विजय करे' से ली गई है। यह कविता निराला के काव्यसंग्रह 'गीतिका' में संकलित है। पहली बार इसका प्रकाशन 'माधुरी' पत्रिका के फरवरी, 1936 अंक में हुआ था। प्रस्तुत कविता में निराला श्रीधर पाठक से राष्ट्र–वंदना की चली आ रही परंपरा का पालन करते हुए भारतभूमि की वंदना की है।

प्रसंग : कविता की इन पंक्तियों में कवि भारतमाता के वक्षस्थल और शिरोभाग के सौंदर्य का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या : कवि इन पंक्तियों में कह रहा है कि भारतमाता के वस्त्र यहां के वृक्ष, विभिन्न प्रकार की घास और वन की लताएं हैं, और उनके आंचल में विविध प्रकार के फूलों का सौंदर्य अंकित है। यहां ध्यान देने वाली बात है कि भारतमाता साड़ी पहने हुए हैं और साड़ी का आंचल उसके शेष भाग से ज्यादा खूबसूरत होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कवि कह रहा है कि भारतमाता की साड़ी का निर्माण तो वृक्ष, घास और जंगली लताओं से हुआ है लेकिन उनका आंचल विभिन्न प्रकार के फूलों से बना है। साड़ी की तुलना जंगली लताओं से सोच-समझ कर ही की गई है। जैसे लताएं वृक्षों के ऊपर लटकती रहती हैं वैसे ही साड़ी किसी स्त्री के बदन पर झूलती रहती है। गंगा के प्रकाश सदृश्य स्वच्छ जल और उनके भौगोलिक विस्तार को देखकर निराला को लगता है कि भारतमाता के गले का हार है। ऐसा वे गंगा-जल के वैशिष्टय और भारतवर्ष के वैभव के विस्तार के इतिहास का ध्यान में रखकर भी कह रहे हैं। भारत की सबसे अधिक उपजाऊ जमीन गंगा के जल द्वारा सिंचित प्रदेश ही रहा है। इसलिए कवि कहता है कि भारतमाता के गले में मोतियों सा उज्ज्वल गंगा रूपी हार झूल रहा है। गंगा का जल इतना साफ और सफेद है कि उसके जल के कणों की तुलना कवि ने मोतियों से की है और गंगा के सफेद जल धारा की तुलना मोतियों की माला से की है।

भारतमाता के शिरोभाग का वर्णन करते हुए निराला कविता के अंतिम बंद में कहते हैं कि उनका मुकुट श्वेत हिम के कणों से बना हुआ है और उनकी सांसों में ओंकार नामक ईश्वरीय ध्वनि का वास है। भारत के उत्तर में विशाल हिमालय पर्वत स्थित है। यह भगवान शिव का निवास स्थल भी माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि हिमालय पर्वत पर निरंतर ओंकार की ध्वनि गुंजायमान होती रहती है। भारतमाता मूक नहीं है। उनकी सभी उदार दिशाओं से ध्वनियों का गुंजन हो रहा है और गुंजन किसी एक मुख से नहीं बल्कि सैकड़ों मुखों और सैकड़ों आवाजों के द्वारा हो रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतमाता का आंचल उदार है, वह अपने आंचल में सबको उदार भाव से स्थान देती हैं। भारतीय संस्कृति और समाज किसी एक जाति का समाज नहीं है। इसका निर्माण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों से मिलकर हुआ है और उन सबकी सम्मिलित आवाज ही भारतमाता की आवाज है।

विशेष : भारत के नक्शे पर यदि भारतमाता की तस्वीर बनाई जाए तो वह इस कविता में वर्णित भारतमाता के स्वरूप के अनुरूप ही होगी। भारत के उत्तर में हिमालय, मध्य से थोड़ा ऊपर गंगा, मध्य में वनप्रांतर और पैरों के पास सागर स्थित है।

पूरी कविता में महाप्राण ध्वनियों का प्राधान्य है, जिसके द्वारा ओज गुण का सृजन करना कवि का लक्ष्य है। यह कविता आजादी के दौरान मंत्र की तरह पढ़ा जाता था।

2.4.2 छायावाद और निराला

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद ही नहीं समूची हिन्दी कविता में अपना एक खास स्थान और महत्व रखने वाले कवि हैं। छायावादी कवियों में जितनी अधिक चर्चा निराला की हुई है, उतनी शायद ही किसी अन्य कवि की हुई हो। निराला का लेखन-काल छायावाद से लेकर नई कविता के बाद तक विस्तृत है। उनकी कविता में विकास की

निरन्तरता को आसानी से लक्षित किया जा सकता है। वे किसी धारा या वाद के बंधन में बंधने वाले कवि नहीं थे, फिर भी उनकी कविता में छायावादी काव्य तत्वों की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

देश प्रेम एवं स्वातंत्र्य चेतना– देश प्रेम और स्वातंत्र्य की भावना छायावादी काव्य का केन्द्रीय भाव है। छायावाद की राष्ट्रीयता राजनीतिक नहीं सांस्कृतिक है। इसीलिए वह छायावादी कवियों की रचनाओं में सतह पर नहीं बल्कि अंतर्धारा की तरह बहती है। निराला एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में देशप्रेम और स्वातंत्र्य चेतना प्रत्येक प्रकार के बंधनों से मुक्ति के रूप में प्रकट हुई है–

तोड़ो–तोड़ो तोड़ो कारा,

निकले भी गंगाजल धारा।

निराला के लिए देश सिर्फ भौगोलिक इकाई नहीं बल्कि एक जीवित रागात्मक लगाव और सत्ता है। जो प्रतिदिन प्राणों में नूतन संगीत भरता है। वे भारत माता के यश की आराधना और महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

भारति, जय विजय करे! कनक–शस्य–कमल धरे।

लंका पदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर जल

धोता शुचि धरण–युगल, स्तव कर बहु अर्थ भरे।

वैयक्तिकता : वैयक्तिकता छायावाद की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। छायावादी कवि व्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर है। निराला भी अपनी कविताओं में समाज में व्यक्ति स्वातंत्र्य की बात करते हैं। किन्तु सामाजिक बंधन इतने कठोर हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए उससे टकराना पड़ता है, और उस टकराहट में व्यक्ति दुख पाता है। निराला 'राम की शक्ति पूजा' कविता में राम के माध्यम से अपने ही जीवन की व्यथा कहते हैं–

धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।

धिक साधन जिनके लिए सदा ही किया शोध।

रहस्यानुभूति : छायावादी कवियों की तरह ही रहस्यानुभूति निराला की भी कविता की विशेषता है। अलौकिक सत्ता के प्रति जिज्ञासा और आत्मनिवेदन का भाव ही रहस्यवाद है। निराला की कविता में इस रहस्यवाद की अभिव्यक्ति खूब हुई है। निराला पर अद्वैतवाद, उपनिषदिक चेतना और विवेकानन्द का प्रभाव है। उनकी कविता में रहस्यवाद की भावना वहीं से आयी है। 'तुम और मैं' कविता में वे कहते हैं कि–

तुम तुंग हिमालय शृंग

और मैं चंचल गति सुरि–सरिता

तुम विमल उदय उच्छ्वास

और मैं कान्त–कामिनी कविता।

प्रकृति का मानवीकरण : प्रकृति निराला की सहचरी है। निराला का पूरा जीवन कई प्रकार के संकटों और दुखों से घिरा रहा है। उसमें यदि कहीं कुछ सुन्दर है तो वह प्रकृति

ही है। उन्होंने अपनी कविता में प्रकृति को कई रूपों में चित्रित किया है। प्रकृति का मानवीकरण कर उन्होंने उसे अद्वितीय स्वरूप दिया है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' जो पहले प्रकाशन योग्य नहीं मानी गयी थी, वह बाद में प्रकृति पर लिखी गयी श्रेष्ठ कविता मानी गयी। उक्त कविता में निराला ने मलय समीर (हवा) और जूही की कली के प्रेम का अप्रतिम वर्णन किया है–

सोती थी

जाने कहा कैसे प्रिय आगमन वह

नायक ने चूमे कपोल

डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल

स्त्री का गरिमापूर्ण चित्रण : निराला के काव्य में स्त्री के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की गयी है। निराला के लिए स्त्री सहचरी, प्रेमिका और मां है। निराला के लिए स्त्री भोग नहीं प्रेरणा की स्रोत है। 'यामिनी जागी' कविता में वे स्त्री को प्रेयसी के रूप में चित्रित करते हैं–

प्रिय यामिनी जागी।

अलस पंकज दृग अरुण–मुख।

तरुण अनुरागी।

खुले केश अवशेष शोभा भर रहे।

पृष्ठ ग्रीवा–बाहु उर पर घिर रहे।

'राम की शक्ति पूजा में' निराला के राम अधर्म पर विजय के लिए शक्ति की आराधना करते हैं। वहां महाशक्ति स्त्री स्वरूप में आकर राम के विजय का मार्ग प्रशस्त करती हैं। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में स्त्री का गरिमापूर्ण चित्रण कर उसे जीवन की प्रेरणा के रूप में स्वीकृति दी है–

श्री राघव हुए प्रणत मन्द–स्वर–वन्दन कर,

होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।

कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

मानवतावादी जीवन दर्शन : छायावादी काव्य पर उसके समकालीन वैचारिक दर्शनों का प्रभाव स्पष्ट है। छायावाद का समय भारतीय स्वाधीनता का समय है। प्रमुख छायावादी कवि अपने समय में चलने वाले आंदोलनों, वैचारिक परिवर्तनों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े थे। निराला स्वयं गांधीजी, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुषों के विचारों से परिचित थे। साथ ही वे दुनिया भर के तमाम दूसरे विचारकों की भावना को देख समझ रहे थे। इन सभी विद्वानों के विचारों के साथ उनका कभी सहमति तो कभी असहमति का भाव चलता रहता था। अपने समय की प्रखर चेतना से जुड़ने के कारण निराला के भीतर एक नये वैचारिक जीवन दर्शन का सूत्रपात हुआ जिसे नया मानवतावादी दर्शन कहा जा सकता है। वैसे यह नवीन मानवतावादी दर्शन पूरे छायावादी काव्य का ही है। जो सबके हित की कामना, प्रत्येक प्रकार की शोषण से मुक्ति की बात करता है। निराला 'भिक्षुक' कविता में कहते हैं कि–

ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, सींच दूंगा।

अभिमन्यु–जैसे हो सकोगे तुम।

भाषा, छंद, और बिम्ब : छायावादी काव्य ने कविता की भाषा का नया संस्कार किया। कविता की भाषा जो अब तक व्याकरण के शुष्क नियमों, तथाकथित मर्यादा में बंधी हुई थी, उसे छायावादी कवियों ने आजाद करा उसे नई संभावनाओं से भर दिया। स्वयं निराला ने अपनी कविता में भाषा को एक नये रूप में बरता है। उनकी कविता में एक ओर देशज भाषा का तेवर है तो दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का वैभव। देशज भाषा का तेवर 'कुकुरमुत्ता' कविता में तो संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का वैभव 'राम की शक्ति पूजा' की भाषा में देखा जा सकता है।

छायावादी कविता ने मुक्त छंद को अपनाकर कविता में छन्दों के परम्परागत ढांचे को तोड़ा। मुक्त छंद की अवधारणा निराला ने की। आज की हिन्दी कविता भी मुक्त छंद में ही लिखी जा रही है। इसी तरह काव्य में बिम्बों के प्रयोग को लेकर भी छायावादी कवियों ने महत्वपूर्ण कार्य किया। निराला ने संश्लिष्ट और सुकुमार दोनों तरह के बिम्बों का प्रयोग किया है। इन दोनों प्रकार के बिम्बों के उदाहरण उनकी प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' में देखे जा सकते हैं–

संश्लिष्ट बिम्ब : है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न केवल जलती मशाल।

सुकुमार बिम्ब : नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान–पतन।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला प्रमुख छायावादी कवि हैं। उनकी कविता में छायावाद की सभी विशेषताएं उपलब्ध हैं। कई स्थानों पर वे छायावाद की सीमा का अतिक्रमण भी करते थे। किन्तु उनका मुख्य काव्य संस्कार छायावादी ही रहा।

2.4.3 निराला के काव्य में प्रगति और विद्रोह के स्वर

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों प्रगति और विद्रोह के प्रतीक हैं। निराला जीवन, समाज और रचना सभी स्तरों पर संघर्ष करते रहे। किन्तु कहीं भी किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया। वे सत्य के अन्वेषक थे। इसीलिए वे सामान्यतः प्रगति और विद्रोह के पक्षधर थे। आलोचक बच्चन सिंह ने अपनी पुस्तक 'क्रान्तिकारी कवि निराला' में निराला के विद्रोही व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है कि "निराला के जीवन को आद्यंत देखने पर इनका व्यक्तित्व अतिशय क्रान्तिकारी सिद्ध होता है। साहित्य और समाज दोनों स्थानों में इन्होंने क्रान्ति की है। अनावश्यक रूढ़ियों के विरोध में खुलकर विद्रोह किया है। इनका सारा साहित्यिक तथा सामाजिक जीवन विद्रोह से भरा हुआ है। मुक्तछंद का विधान सबसे पहले इन्होंने किया। इनकी इस शैली का विरोध हुआ...। किन्तु इन्हें अपने मार्ग से विचलित करने में कोई शक्ति भी सफल न हुई। निरपेक्ष गीतों का निर्माण, सटीक

भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा।

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।

निराला अपने जीवन के कठिनतम क्षणों में स्त्री से ही प्रेरणा प्राप्त करते है। यह युक्ति उनकी स्त्री–चेतना का महानतम उदाहरण है साथ ही यह बरसों से पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था द्वारा गढ़ी गयी स्त्री की हीन, कमजोर और पददलित छवि के विरुद्ध निराला का विद्रोह है। निराला अपनी प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' में राम को सीता की स्मृति से प्रेरणा प्राप्त करते हुए दिखाते हैं–

सिहरा तन, क्षण–भर भूला मन, लहरा समस्त,

हर धनुर्भग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,

फूटी स्मिति सीता–ध्यान–लीन राम के अधर,

फिर विश्व–विजय–भावना हृदय में आयी भर।

पूंजीगत शोषण के प्रति विद्रोह और वंचितों की प्रगति की पक्षधरता : निराला अपनी कविता में पूंजीवाद के संस्थानिक रूपों, जो जमींदारों, मील मालिकों, सेठों–व्यापारियों के रूप में आम जनता का शोषण कर रहे हैं, उनके प्रति विद्रोह का भाव रखते हैं। निराला सच्चे अर्थों में जन–सामान्य के प्रति सहानुभूति रखते हैं। वे अपनी कविता 'किनारा वह हमसे' में पूंजीपति वर्ग के वास्तविक चरित्र को बेनकाब करते हुए कहते है कि–

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है।

देश को मिल जाय जो पूंजी तुम्हारी मिल में है।

या

जन खींची खानों से

कल और कारखानों से।

रामराज के पहले के दिन आये।

वनिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया

टापू में ले जाकर रखा और कैद कर लिया।

इसी तरह वे समाज के शोषित–पीडित दलित–वंचित जनों के जीवन की वास्तविक स्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी प्रगति की कामना करते हैं।

मानव जहां बैल–घोड़ा है,

कैसा तन–मन का जोड़ा है?

किस साधन का स्वांग रचा यह,

किस बाधा की बनी त्वचा यह,

देख रहा है विज्ञ आधुनिक

वन्य भाव का कोड़ा है।

इस तरह से देखा जा सकता है कि निराला अपने काव्य में प्रत्येक प्रकार की रूढ़ियों, जडता, शोषण के प्रति विद्रोह और सामाजिक प्रगति की कामना करते हैं।

2.5 महादेवी वर्मा : सामान्य परिचय

महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। इनका जन्म 1907 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। महादेवी के पिता का नाम श्री गोविन्द प्रसाद एवं माता का नाम हेमरानी देवी था। महादेवी के घर का संस्कार सात्विक और शिक्षा के प्रति अनुराग रखने वाला था। पिता गोविन्द प्रसाद ने एम.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त की थी। माता हेमरानी भी शिक्षित और उच्च संस्कारों वाली थीं। माता–पिता के उच्च संस्कारों के बीच बालिका महादेवी का पालन–पोषण हुआ। महादेवी के भीतर शिक्षा, संगीत और चित्रकला के प्रति गहरी जिज्ञासा थी। जिसके चलते वे इन विधाओं में अधिकार हासिल कर सकीं। नौ वर्ष की अवस्था में महादेवी का विवाह इलाहाबाद के श्री रूपनारायण वर्मा से हुआ। विवाह के बाद वे इलाहाबाद आ गयीं। इलाहाबाद आने के बाद महादेवी जी की औपचारिक शिक्षा हुई। संस्कृत विषय में एम.ए. करने के बाद उनकी नियुक्ति प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्राचार्य के पद पर हुई।

महादेवी का स्थान छायावादी काव्य में विशिष्ट है। जीवन के तमाम झंझावातों के बीच उनका सृजन विकसित होता रहा। पति श्री रूपनारायण वर्मा के असमय निधन होने के बाद उनके जीवन में एक खास तरह का वैराग्य उत्पन्न हुआ। किन्तु यह वैराग्य उन्हें दुनिया से विलग नहीं करता बल्कि समभाव के साथ जीवन–जगत से जोड़ता है। उनका उदार, मानवतावादी और मिलनसार व्यक्तित्व बनकर रचनाओं में व्यक्त हुआ। वे अब जीवन को कर्ताभाव से नहीं साक्षी भाव के साथ जीने में विश्वास करने लगी थीं। उनके भीतर पीडित मानवता के प्रति, स्त्री जीवन के दुखों के प्रति, गरीब, शोषित लोगों के प्रति उनके भीतर अपार करुणा प्रवाहित होती रहती।

महादेवी वर्मा को उनके विशिष्ट साहित्य लेखन के लिए मंगलाप्रसाद पारितोषिक, भारत भारती, पद्म भूषण, पद्म विभूषण और भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त हुए। 11 सितम्बर, 1987 को महादेवी वर्मा का निधन हो गया।

महादेवी वर्मा की रचनाएं

कविता संग्रह : नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, गीतपर्व, नीलांबरा, आत्मिक, सप्तपर्णा, प्रथम आयाम, अग्निरेखा

रेखाचित्र : अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं

संस्मरण : पथ के साथी, मेरा परिवार

चुने हुए भाषणों का संकलन : संभाषण

निबंध : शृंखला की कड़ियां, विवेचनात्मक गद्य, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, संकल्पिता, हिमालय, क्षणदा

अनुवाद : सप्तपर्णा (वेद और गीत गोविन्द के महत्वपूर्ण अंशों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद)

संपादन : चांद, साहित्यकार

2.5.1 महादेवी वर्मा : पाठ्यांश – विरह का जलजात जीवन, रुपसि तेरा घन केशपाश

1. विरह का जलजात जीवन

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात!
जीवन विरह का जलजात!
आंसुओं का कोष उर, दृगु अश्रु की टकसाल,
तरल जल–कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात!
जीवन विरह का जलजात!

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की कविता विरह का जलजात जीवन से ली गई हैं। महादेवी वर्मा बुद्ध के दुखवाद से प्रभावित हैं और उनकी मान्यता है कि संसार का चरम सत्य दुख है। सुख जहां हमें जगत से दूर करता है वहीं दुख समस्त मानवता से हमें जोड़ता है। महादेवी जी के लिए वेदना जीवन का सबसे सुंदर काव्य है। महादेवी के दुख का लौकिक पक्ष भी है और अलौकिक पक्ष भी है। वेदना उन्हे इसलिए भी प्रिय है क्योंकि यह परमात्मा से मिलन की राह बताती है। महादेवी का दुख जितना जीवन के सुखों से दूरी की वजह से है उससे अधिक परमात्मा से अलगाव के कारण। महादेवी परमात्मा के अलगाव से जन्मे विरह के कारण दुखी हैं, लेकिन यह दुख उन्हें बेचैन नहीं करता। वेदना महादेवी को उस करुणा से जोड़ती है जो जीवन को सब ओर स्पर्श कर स्निग्ध उज्ज्वलता प्रदान करती है।

शब्दार्थ : जलजात– कमल, आवास– घर, दिवस– दिन, उर– हृदय, दृगु– नेत्र, कोष– खजाना, टकसाल– जहां मुद्रा की छपाई होती है, मृदु– कोमल, गात– शरीर।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में महादेवी वर्मा अपने जीवन को विरह का रूप बता रही हैं। उनका मानना है कि मनुष्य का जीवन दुख और वेदना से घिरा रहता है।

व्याख्या : कवयित्री महादेवी का कहना है कि मेरा संपूर्ण जीवन विरह का कमल है। जीवन को विरह का कमल कहने का मतलब यह है कि उस परमात्मा के अलगाव से पैदा हुए विरह के कारण मेरा जीवन कमल की तरह खिल उठा है। महादेवी के लिए विरह पीड़ा का नहीं आनन्द का विषय है। विरह और वेदना उन्हें काम्य है। वे आगे कहती हैं कि इस विरह का जन्म वेदना से हुआ है, जो मनुष्य का अनुभूति या आंतरिक पक्ष है। इसका बाह्य या अभिव्यक्ति पक्ष– आंसू है। इस वेदना का घर करुणा है, अर्थात वेदना करुणा के भीतर विश्राम पाती है। वेदना व्यक्तिगत होती है जबकि करुणा समष्टिगत। वेदना भले ही जन्म लेती है व्यक्तिगत पीड़ा से पर उसकी परिणिति करुणा के भीतर होती है। कवयित्री कहना चाहती है कि मेरा व्यक्तिगत दुख विस्तृत होकर अपने भीतर समस्त संसार की पीड़ा को समाहित कर लेता है। दिन एक–एक आंसुओं को इकट्ठा करता रहता है और रात उन आंसुओं को गिनती रहती है। तात्पर्य यह कि दिन में संसार की पीड़ा को देख–देख मेरा

हृदय उसे एकत्रित करता रहता है और रात्रि के एकांत में एक–एक कर मैं उन पर विचार करती रहती हूं। इसका परिणाम यह हुआ है कि मेरा निर्मल हृदय उन आंसुओं को संचित करने वाला खजाना हो गया है और मेरी आंखें उन आंसुओं को सृजित करने वाली टकसाल हो गयी हैं। मेरा जो कोमल शरीर है, वह क्षणिक अस्तित्व वाले बादल की तरह अश्रु–जल से बना है। महादेवी वर्मा कहना चाहती हैं कि मेरा समस्त अस्तित्व वेदना और विरह के भीतर ही सृजित हुआ है। सांसारिक स्तर पर यह पति द्वारा परित्यक्त एक नारी के वेदनामय जीवन का बिम्ब है जबकि आध्यात्मिक स्तर पर यह परमात्मा के बिछुडन से पीड़ित जीवात्मा की अंतरात्मा की आवाज है।

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहां मधुमास!
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात!
जीवन विरह का जलजात!
काल इसको दे गया पल–आंसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात!
जीवन विरह का जलजात!
जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!
जीवन विरह का जलजात!

शब्दार्थ : मधुमास– वसंत ऋतु, हाट– बाजार, वात– हवा, निरुपम– सुंदर, स्मित– मुस्कान।

सन्दर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री ने अपनी वेदना को व्यापक आयाम दिया है। उनका कहना है कि मेरा विरह और उससे जन्मी वेदना अंततः करुणा में विश्राम पाती है। अर्थात मेरा व्यक्तिगत दुख संसार की पीड़ा को हरने का उपादान बन जाता है।

व्याख्या : जिस प्रकार फूलों के पराग कण के बिखरने से प्रकृति में वसंत ऋतु का आगमन होता है वैसे ही मेरे जीवन में आंसुओं के मधुकण को लुटाता हुआ वसंत आता है। यहां महादेवी जी वेदना में ही आनंद की तलाश करती हैं। उनका मानना है कि जीवन का वास्तविक सौंदर्य वेदना में ही है। इस तथ्य को तार्किक परिणति तक पहुंचाते हुए महादेवी कहती हैं कि मेरे जीवन में आंसुओं का बाजार लगा हुआ है जिससे संसार में करुणा की बरसात हो रही है। महादेवी जी की कविताओं में वेदना का चरम–रूप करुणा में मिलता है, या यह कहें कि उनकी वेदना करुणा में विश्राम पाती है। वे आगे कहती हैं कि प्रत्येक क्षण समय ने मुझको आंसुओं का हार पहना रखा है और मेरे जीवन की कहानी हवा मेरी ही सांसों से जानना चाहती है। कविता की अंतिम पंक्तियों को आध्यात्मिक रंग देते हुए महादेवी कहती हैं कि तुम्हारी वेदना से द्रवित होकर यदि आज वह परमात्मा तुम्हें अपना ले तो तुम्हारी मुस्कान से यह सारा जगत खिल उठेगा। इसका एक

अर्थ यह भी है कि यदि तुम्हारी वेदना ईश्वरीय आभा से मंडित हो जाए तो वह संसार की पीड़ा हर सकने में समर्थ होगा।

2. रुपसि तेरा घन–केश पाश!

रुपसि तेरा घन–केश पाश!
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश–पाश!
नभगंगा की रजत धार में
धो आई क्या इन्हें रात?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात!
भीगी अलकों के छोरों से
चूती बूंदें कर विविध लास!
रुपसि तेरा घन–केश पाश!

शब्दार्थ : रुपसि– सुंदर स्त्री, श्यामल– सांवला, सुरभित– सुगंधित, पाश– जाल, रजत– चांदी, सद्यःस्नात– अभी अभी नहाकर आया हुआ, नभगंगा– आकाशगंगा, अलक– पलक लास– नृत्य।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां महादेवी वर्मा की कविता 'रुपसि तेरा घन–केश पाश!' से ली गई हैं। इस कविता में उषाकालीन प्राकृतिक सौंदर्य का सूक्ष्म अंकन किया गया है। सूर्योदय के पहले के समय को उषा कहते हैं। कवयित्री ने इस कविता में उषा का मानवीकरण करते हुए उसकी कल्पना एक स्त्री के रूप में की है। उषाकाल में प्रकृति के सौंदर्य को देखकर महादेवी जी को लगता है जैसे अभी–अभी कोई स्त्री नदी में स्नान कर अपने काले लंबे खुले सुगंधित बालों को सुखाने के लिए लहराते हुए आ रही है।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में प्रातःकालीन आलोक मिश्रित धुंधलेपन के सौंदर्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या : उषाकाल का मानवीकरण करते हुए महादेवी जी कहती हैं कि प्रातःकाल की प्रकृति को देखकर लगता है जैसे कोई सुंदर स्त्री अपने काले घने बालों के जाल में समस्त संसार को बांधने के लिए निकल पड़ी है। सूर्योदय के पहले के समय को यदि हम स्मरण करें तो उस समय पूरी तरह उजाला नहीं होता और न ही अंधेरा रहता है। रात के अंधेरे की छाया की तुलना कवयित्री ने उषा रूपी स्त्री के काले घने केशों से की है जबकि उसके मुख की कल्पना धीरे–धीरे हो रहे प्रकाश से की है। महादेवी जी कविता की आरंभिक पंक्तियों में उषा को संबोधित करते हुए कहती हैं कि ऐ सुंदर स्त्री तुम्हारे घने काले बालों के सुंदर जाल में कौन नहीं बंध जाएगा। उषाकाल का सौंदर्य ऐसा होता है कि वह मृत हृदयों में नई जान डाल दे। समस्त प्रकृति उसके सम्मोहन से सम्मोहित होती है। कवयित्री कह रही हैं कि तुम्हारे केश काले और कोमल हैं। तुम्हारे बालों का जाल सुगंध से भरा हुआ

है और लहरा रहा है। उषाकाल में रात की गहरी कालिमा कम हो जाती है और वातावरण में एक किस्म की कोमलता आ जाती है। हल्की हल्की हवा चलने लगती है और उसमें अभी–अभी खिले फूलों की खुशबू भरी होती है। उषा से प्रश्न करते हुए कवयित्री कहती है कि क्या तुम अपने बालों को रात में आकाशगंगा की चांदी जैसी सफेद धारा में धो कर आ रही हो। शायद इसीलिए तुम्हारे भीगे हुए अंगों में ठंड की वजह से कंपन है और ऐसा स्नाता इसीलिए शायद तुम्हारे तन में एक किस्म की सिहरन है। तुम्हारे बालों के भीगे हुए किनारों से आकाशगंगा का जल विविध प्रकार का नृत्य करते हुए चू रहा है। उषाकाल में रात की ओस समस्त पृथ्वी को भिगोए रहती है। उस समय हल्की हल्की ठंड भी रहती है। इस प्राकृतिक स्थिति का सूक्ष्म और मनोरम चित्रण महादेवी जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है।

सौरभ भीना झीना गीला

लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल,

चल अञ्चल से झर झर झरते

पथ में जुगनू के स्वर्ण–फूल,

दीपक से देता बार बार

तेरा उज्ज्वल चितवन–विलास!

रुपसि तेरा घन–केश पाश!

शब्दार्थ : सौरभ– सुगंध, दुकूल– रेशमी कपड़ा, अंजन– काजल, झीना– बारीक, मृदु– कोमल, स्वर्ण– सोना, चितवन– प्रेमपूर्वक देखने का ढंग।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में उषा रूपी स्त्री के मुख के आकर्षक सौंदर्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या : इन पंक्तियों में महादेवी जी कहती हैं कि सुंदर स्त्री की तरह दिखने वाली उषा का रेशमी कपड़ों से बना हुआ आंचल उसके शरीर पर कोमल काजल की तरह लिपटा हुआ है। वह आंचल भीनी–भीनी सुगंध से भरा हुआ है। वह झीना–झीना है जिसमें से कुछ दिखता है और कुछ नहीं दिखता है और वह हल्का गीला है। सुबह के समय रहने वाले हल्के अंधेरे की कल्पना कवयित्री ने उषा के आंचल के रूप में की है जिसमें से कुछ दिखाई पड़ता है और कुछ नहीं दिखाई देता है। जब उषा रूपी स्त्री रास्ते में चलती है तो उसके हिलते हुए आंचल से रात के जुगनू रूपी फूल झरते रहते हैं। उषाकाल में रात में उड़ने वाले जुगनू जमीन पर गिरने लगते हैं। तुम्हारे उज्ज्वल मुख के आकर्षित करने वाले अनेकानेक मनोभाव ऐसे दीपक की तरह प्रतीत हो रहे हैं जो सांसारिक मनुष्य रूपी परवानों को बार–बार अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं।

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है

बक–पांतों का अरविन्द–हार,

तेरी निश्वासें छू भू को

बन बन जाती मलयज बयार

केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन

जगती जगती की मूक प्यास!

रुपसि तेरा घन-केश पाश!

शब्दार्थ : उच्छवसित- गहरी सांस लेना और छोड़ना, वक्ष- हृदय, बक- बगुला, अरविन्द- कमल, भू- भौंह, मलयज- चंदन, केकी रव- मोर के बोलने की ध्वनि, जगती- जीवन, जगत।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में प्रातःकाल में प्रकृति के बीच होने वाली हलचलों का मनोरम वर्णन किया गया है।

व्याख्या : महादेवी वर्मा कह रही हैं कि उषा रूपी नारी अपने सौंदर्य की ऊर्जा से आनंदित है और जब वह उत्साह में भरकर चलती है तो उसके गले की कमल की माला चंचल हो उठती है। उषाकाल में आसमान में उड़ रही सफेद बगुले की पंक्ति को देखकर कवयित्री को महसूस होता है कि यह उषा रूपी नारी के गले में झूलने वाले कमल की माला है। उसको संबोधित करते हुए आगे कहती हैं कि ऐ उषा तुम्हारी सांसें जब इस पृथ्वी को छूती हैं तो चारों तरफ चंदन की खुशबू वाली हवा चल पड़ती है। तुम्हारे आगमन के अहसास से उठने वाली मोर की आवाज को सुनकर इस संसार के लोगों के भीतर छुपी हुई जीने की प्यास एक बार फिर से जग जाती है। रात के घने अंधेरे से निराशा का जो एक बादल संसार की चेतना पर छा जाता है उषा के आगमन से उसमें फिर से एक चैतन्यता आ जाती है।

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन,

पुलकित अंगों से भर विशाल,

झुक सस्मित शीतल चुम्बन से

अंकित कर इसका मृदुल भाल,

दुलरा देना बहला देना,

यह तेरा शिशु जग है उदास!

रुपसि तेरा घन-केश पाश!

शब्दार्थ : स्निग्ध- कोमल, मुलायम, लट- बाल, तन- शरीर, पुलकित- रोमांचित, सस्मित- मुस्कराना, मृदुल- कोमल, भाल- ललाट, दुलारा- वात्सल्य भरा प्यार।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में महादेवी वर्मा उषा से उदास जग रूपी शिशु को अपने चुंबन से प्यार कर उसे आनंदित करने का आग्रह करती हैं। इन पंक्तियों में मनुष्य और उषा के बीच बेटे और मां के रिश्ते को जोड़ा गया है।

व्याख्या : महादेवी वर्मा उषा से कहती हैं कि तुम मां की तरह हो। यह संसार तुम्हारे बेटे की तरह है। जीवन की विपदा रूपी अंधेरी रात में यह बहुत रोया है और बहुत उदास है, अत: मैं तुमसे आग्रह करती हूं कि तुम अपने मुलायम बालों को उसके शरीर पर बिखेर कर अपने रोमांचित अंगों में इस विशाल संसार को भर लो। फिर थोड़ा झुककर मुस्कुराते हुए एक ठंडा चुंबन इस संसार रूपी शिशु के माथे पर अंकित कर दो। थोड़ी देर के लिए ही सही इसको प्यार कर जरा बहला दो ताकि कुछ समय के लिए ही सही यह अपनी पीड़ा भूल जाए। उषाकाल का समय ऐसा होता है जब मनुष्य तमाम दुखों को भूलकर प्रकृति की गोद में आनंद का अनुभव करता है। कवयित्री इसी मनोभाव का चित्रण इन पंक्तियों में किया है।

2.5.2 विरह वेदना

आधुनिक युग की मीरा के नाम से विख्यात महादेवी वर्मा का जीवन करुणा और वेदना से भरा रहा है। छायावाद की काव्य–धारा प्रवाहित करते रहने में, न सिर्फ प्रवाहित करने में बल्कि श्रेष्ठ काव्यात्मकता और गहरी संवेदना के साथ आगे बढ़ाने में महादेवी वर्मा का अहम् योगदान रहा है। अज्ञात लालसा, उससे विरह और उससे न मिल पाने की पीड़ा उनकी कविता में अनेक रूपों में विद्यमान है। सम्भव है कि उस पीड़ा के कारण–तत्वों में तत्कालीन परिस्थितियों और स्वयं की जीवन–स्थितियों का भी हाथ रहा हो।

महादेवी वर्मा के काव्य में मौजूद विरह–वेदना के कारण ही उन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' कहा जाता है। महादेवी वर्मा के काव्य पर बौद्ध–दर्शन का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जो आदि से अन्त तक उनकी काव्य–चेतना को संचालित करता रहा है। महादेवी वर्मा की विरह–वेदना केवल वाणी का आयोजन नहीं है, वह उनके हृदय का स्थायी–भाव है। उनका विरह एक ओर प्रेम का उज्ज्वल स्वरूप है तो वहीं दूसरी ओर वह प्रेम की कसौटी भी है। महादेवी वर्मा के काव्य में चित्रित विरह–वेदना हिन्दी साहित्य की उस महान परम्परा का विकास है, जिसमें विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, मतिराम, बिहारी, घनानंद और भारतेंदु जैसे रचनाकार हैं।

महादेवी वर्मा की विरह–वेदना को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से समझा सकते हैं–

प्रेम के विरह की अधिकता– महादेवी वर्मा के काव्य में प्रेम तत्व की गहनता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। किन्तु उनका प्रेम बांधता नहीं मुक्त करता है। महादेवी वर्मा ने जिस प्रेम को अपने जीवन की निधि की तरह सवारा और अभिव्यक्त किया है, उससे बिछुड़ने के बाद वह पीड़ा देता। महादेवी उसी पीड़ा के मध्य से जीने की राह निकालती हैं। उन्हें उस वेदना के अतिरिक्त और कुछ पाने की लालसा नहीं बल्कि उसे ही अपने जीवन का क्रम बनाना चाहती हैं–

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें पीड़ा ढूंढूंगी।

निरंतर विरहानुभूति– महादेवी की विरह–वेदना क्षणिक नहीं है। वह उनके जीवन–काव्य का निरंतर सत्य है। उनके काव्य में चित्रित विरह कोई ठहरी हुई चीज न होकर उनके मन

की विकसित और शाश्वत स्थिति है। महादेवी वर्मा के काव्य की विरहानुभूति में नदी के प्रवाह की तरह निरंतरता तथा समुद्र की गहराई जैसा उद्वेलन है। उनका विरह बनावटी नहीं बल्कि स्वाभाविक है। जितना स्वभाविक महादेवी वर्मा की विरहानुभूति है उतना ही स्वाभाविक उसका चित्रण है। महादेवी वर्मा की विरहानुभूति इतनी निर्दोष और पवित्र है कि वे उसको अपने जीवन का स्थायी छंद बना देती हैं। वह स्वयं दीपक की तरह तिल–तिल जलकर भी अपने प्रियतम का पथ प्रकाशवान बनाए रखने की इच्छा रखती हैं–

मधुर–मधुर मेरे दीपक जल
युग–युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

या

मिलन का नाम मत लो,
मैं विरह में चिर हूं।

अस्तित्व के विसर्जन का भाव– महादेवी वर्मा के लिए जीवन का सबसे बड़ा सुख और चाह विरह की अनिवार्यता है। वह विरह जो उन्हें पीड़ित करता है। महादेवी वर्मा के लिए वह विरह प्रिय है, क्योंकि वह उनके प्रिय का विरह है। इसीलिए महादेवी वर्मा उस विरह से स्वयं को मुक्त नहीं करना चाहती। वे उस विरह के लिए अपने अस्तित्व को भी विसर्जित कर देने के लिए तत्पर हैं। उनके लिए यह भौतिक जगत ही महत्वपूर्ण है, जहां उन्हें उनके प्रिय के विरह से साक्षात्कार हो सका। उन्हें अमरत्व की चाह नहीं है, और न ही वे किसी ऐसे अमर लोक की कल्पना करतीं जहां प्रिय पर मर मिटने का सुख न हो, वेदना न हो, अवसाद न हो बल्कि वे अपने अस्तित्व को विसर्जित करने का अधिकार भी अपने पास रखना चाहती हैं–

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव मुझे! अरे
यह मिटने का अधिकार।

मिलन की अभिलाषा– महादेवी वर्मा के काव्य में विरह की निरंतर प्रवाहित होती स्थितियां हैं। विरह पीड़ा का कारण है। फिर भी महादेवी वर्मा को वह विरह जनित पीड़ा प्रिय है क्योंकि उसी में प्रिय से मिलने की उत्कट अभिलाषा है। प्रिय से मिलने की अपनी स्वाभाविक इच्छा को वे कभी सपनों में तो कभी कल्पना में पूरी करना चाहती हैं। जैसे समुद्र की स्वाभाविक इच्छा चांद को छूने की होती है, और वह अपनी लहरों के माध्यम से हमेशा उसकी कोशिश करता रहता है। पर इसमें वह कभी सफल नहीं हुआ। उसी तरह महादेवी वर्मा के भीतर अपने प्रिय से मिलने की गहरी अभिलाषा, किन्तु वह कभी सम्भव नहीं हो पाता। महादेवी वर्मा के लिए यथार्थ और स्वप्न दोनों प्रिय–मिलन की अधूरी पंक्तियों की तरह हैं–

तुम्हें बांध पाती सपने में
तो चिरजीवन प्यास बुझा लेती उस छोटे से क्षण में।

करुणा की प्रधानता– महादेवी वर्मा की विरह–वेदना में करुणा की प्रधानता है। पहले ही कहा गया था उनके ऊपर बुद्ध की करुणा का विशिष्ट प्रभाव है। महादेवी वर्मा की करुणा उन्हें जीवन–जगत से अलगाती नहीं बल्कि उन्हें इनसे और मजबूती से जोड़ती है। विरह के आवेग में हृदय के भीतर से करुणा का भाव प्रकट होता है। वह करुणा–भाव अत्यन्त पवित्र है, मार्मिक है। जैसे आग में तपकर सोना शुद्ध होता है, उसी प्रकार विरह की ज्वाला मे जल कर महादेवी वर्मा की करुणा मनुष्यता के लिए वरदान बन जाती है–

शून्य मंदिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी,
आज करुणा स्नात उजला दुख ही मेरा पुजारी।

अगाध समर्पण– महादेवी वर्मा की कविताओं में अपने प्रियतम के प्रति अगाध समर्पण का भाव विद्यमान है। अगाध समर्पण का भाव प्रेम की उच्चतर स्थिति है तो वहीं प्रेम की अनिवार्य शर्त भी है। अगाध समर्पण के लिए आत्म–विसर्जन आवश्यक है। आत्म–विसर्जन के अभाव में प्रिय से साक्षात्कार सम्भव नहीं है। इसीलिए महादेवी वर्मा अपनी कविताओं में प्रिय से साक्षात्कार के लिए अगाध समर्पण के लिए स्वयं को प्रस्तुत करती हैं। आत्म समर्पण का यह भाव उन्हें कबीर, सूर, तुलसी और मीरा से जोड़ता है। किन्तु युग–काल के दबाव में हुए महादेवी वर्मा का आत्म समर्पण का भाव रहस्य के झीने पर्दे में हमारे सामने आता है–

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं।
नयन में जिसके जलद वह तृषित चटक हूं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा की कविता में विरह और वेदना स्थायी–भाव की तरह है। महादेवी का विरह–तत्व उनके मनोजगत का आत्यांतिक भाव है, जो उनकी कविता में आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहता है। यहां यह ध्यान रखना होगा कि महादेवी वर्मा की कविता में चित्रित विरह–तत्व जीवन और कर्म विरोधी न होकर जीवन की प्रेरणा बन जाता है, इसीलिए वह वरेण्य है।

2.5.3 महादेवी वर्मा की कविता में छायावादी तत्त्व

छायावादी कविता का जन्म द्विवेदी युग में प्रतिपादित काव्य–मान्यताओं की प्रतिक्रिया में हुआ था। वैसे द्विवेदी युग के अंतिम हिस्से में बदलते समय और युग–चेतना के कारण काव्य के स्वरूप में बदलाव होने लगा था। यह द्विवेदी युग की काव्य सम्बन्धी नैतिकता का ही दबाव ही था कि निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' को अश्लील, अशालीन और काव्य–परम्परा के प्रतिकूल मानते हुए 'सरस्वती' प्रत्रिका में प्रकाशित करने से मना कर दिया गया। किन्तु बाद में जब यह कविता प्रकाशित हुई तब वह न सिर्फ लोकप्रिय हुई, बल्कि उसे छायावादी कविता के उद्घोष की तरह देखा–समझा गया। समय के साथ साहित्य में 'जूही की कली' की स्वीकारोक्ति और महत्ता बढ़ती गयी। यह कविता सम्बन्धी बदलती हुई मान्यताओं के कारण सम्भव हो सका।

'छायावाद' हिन्दी का पहला व्यवस्थित काव्य आंदोलन है। 'छायावाद' शब्द का सबसे पहला प्रयोग मुकुटधर पांडेय ने किया। आरम्भ में 'छायावाद' के वस्तु और शिल्प को लेकर बहुत आलोचना हुई। किन्तु कालान्तर में इसे आधुनिक हिन्दी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि माना गया। इस तरह देखा जा सकता है कि 'छायावाद' एक ऐसी काव्य–धारा

है जो कटु आलोचना से प्रतिष्ठित हुई है। छायावाद की समय–सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक मानी जाती है। इसमें दो–एक साल आगे–पीछे हो सकता है।

छायावादी कविता की एक खास विशेषता यह है कि इसे प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा जैसे रचनाकार मिले तो रामचन्द्र शुक्ल और नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे आलोचक भी मिले। इसलिए छायावादी कविता को उसके आरम्भिक दिनों में ही आलोचना की श्रेष्ठ कसौटियों पर जांचा–परखा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद के सन्दर्भ में कहा कि 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य–शैली या पद्धति विशेष के अर्थ में किया जाता है।' प्रमुख छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है।' तो वहीं महादेवी वर्मा ने कहा कि 'छायावाद तत्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीत है।' इस तरह देखें तो 'छायावाद' की प्रकृति और संवेदना को समझने का प्रयास आलोचक के साथ स्वयं छायावादी कवि भी कर रहे थे।

प्रमुख छायावादी कवियों में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा हैं। सभी विशिष्ट हैं किन्तु इनमें महादेवी वर्मा का स्थान अन्यतम है। महादेवी वर्मा का काव्य छायावादी कविता की कल्पनाशीलता, सूक्ष्मता और वैयक्तिकता के साथ ही अन्य छायावादी तत्वों का दर्पण है। महादेवी वर्मा की कविता में छायावादी तत्त्वों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

प्रकृति का सौन्दर्य निरूपण : छायावादी कवियों का प्रकृति से बहुत लगाव रहा है। स्वयं महादेवी वर्मा की अनेक कविताओं, निबन्धों में इसकी छाया देखने को मिल जाती है। तभी तो गिल्लू, तोता, मैना आदि अनेक पशु–पक्षी, जीव जन्तुओं पर उन्होंने श्रेष्ठ लिखा है। प्रकृति–जगत उनकी कविता का विषय ही नहीं उनके परिवार का जरूरी हिस्सा भी है। महादेवी वर्मा ने अन्य छायावादी कवियों की ही तरह प्रकृति को जीवंत सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया है और उसके विराट सौन्दर्य पर मुग्ध हैं।

मैं बनी मधुमास आली!
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चांदनी
उमड़ आई री, दृगों में
सजनि, कालिन्दी निराली!

शृंगार चित्रण : छायावादी कविता में शृंगार को उसके श्रेष्ठतम रूप में चित्रित किया है। छायावाद के प्रारम्भिक दिनों में द्विवेदीयुगीन काव्य–नैतिकता के कारण छायावादी कवियों की शृंगारिक चित्रण को लेकर सर्वाधिक विवाद था। किन्तु महादेवी वर्मा की कविता में जहां सौन्दर्य का चित्रण है, वहां भी एक विशिष्ट किस्म की मर्यादा एवं अनोखी शांति झलकती है। उनकी कविता में शृंगार की प्रतिष्ठा और चित्रण सौम्यता के साथ हुआ है–

मिलन-मन्दिर में उठा दूं जो सुमुख से सजल गुण्ठन,

मैं मिटूं प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल कण,

सजनि! मधुर निजत्व दे

कैसे मिलूं अभिमानिनी मैं!

राष्ट्रीय नवजागरण : छायावादी कविता में देशप्रेम की अलख और अन्तर्धारा निरन्तर विद्यमान रही है। छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने देश के प्रति अपने भावों को व्यक्त किया है किन्तु छायावादी कवियों की राष्ट्रीयता राजनैतिक न होकर सांस्कृतिक है। महादेवी वर्मा की कविताओं में भी देशप्रेम का प्रखर भाव देखने को मिलता है। जिसमें उन्होंने समकालीन समय के संकट को समझने और उसे देश की जनता को समझाने का प्रयास किया। उन्हें अपने समय और उसमें चलने वाली समस्त गतिविधियों, आन्दोलनों का बोध था। महादेवी वर्मा भी अपनी कविताओं के माध्यम से अपने समय में चलने वाले स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेती हैं। उनकी कई कविताएं राष्ट्रीय-भावना को जन-जन तक प्रेषित करने वाले जागरण-गीत की तरह कार्य करती हैं-

चिर सजग आंखें उनींदी,

आज कैसा व्यस्त बाना,

जग तुझको दूर जाना।

सामाजिक जागरण : छायावादी कविता मनुष्यता के जागरण का काव्य है। मनुष्यता के सम्पूर्ण जागरण के लिए आवश्यक है कि मनुष्य जिस समाज में रहता है; उस समाज को जागृत और जीवंत बनाया जाय। छायावाद की इस चेतना को महादेवी वर्मा ने अपनी कविता में स्वर देते हुए सामाजिक पुनरुत्थान में अपनी भूमिका का निर्वाह करती हैं। महादेवी वर्मा ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, विषमताओं को दूर करने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से जन-जागृति अभियान चलाया। जिसमें उन्होंने सांकेतिक रूप से बिम्बों का उपयोग करते हुए भी अपनी बात को समाज तक पहुंचाया।

वे मुस्काते फूल, नहीं

जिनको आता है मुरझाना,

वे तारों के दीप, नहीं

जिनको भाता है बुझ जाना!

आत्माभिव्यक्ति : आत्माभिव्यक्ति छायावादी कवियों का विशिष्ट स्वभाव है। सभी छायावादी कवियों ने अपनी कविता में किसी न किसी रूप में आत्माभिव्यक्ति की है। स्वयं महादेवी वर्मा ने काव्य के माध्यम से अपने व्यक्तिगत जीवन को खोजने और अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उनकी कविता में स्वयं उनका ही जीवन अपनी तमाम विडंबनाओं, उपेक्षाओं, कमियों और उपलब्धियों के साथ दर्ज हुआ है। अन्य छायावादी कवियों की आत्माभिव्यक्ति से भिन्न महादेवी वर्मा की आत्माभिव्यक्ति में वेदना, पीड़ा और आत्मनिवेदन के स्वर ज्यादा मुखर हैं-

मैं नीर भरी दुख की बदली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,

मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली!

रहस्यात्मकता : छायावादी कविता में रहस्यवाद अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भावबोध है। रहस्य और छायावाद के घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को रहस्यवाद के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य में रहस्य को गैरजरूरी मानते थे, इसीलिए वे छायावाद के मूल्यांकन को लेकर थोड़े कठोर थे। दरअसल छायावादी कविता में मनुष्य एवं प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में अध्यात्म की तलाश की गयी, जो वेदना से युक्त था। महादेवी वर्मा की कविताएं इस बात की प्रमाण हैं। उन्होंने अज्ञात प्रिय के विरह और मिलन की स्थिति को रहस्य के आवरण में प्रस्तुत किया है–

सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता?

सूने में सस्मित चितवन से जीवन–दीप जला जाता!

* * * * * *

घन तम में सपने सा आ कर,

अलि कुछ करुण स्वरों में गा कर,

किसी अपरिचित देश बुला कर... !"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा प्रमुख छायावादी रचनाकार रही हैं। उनकी कविता में लगभग सभी छायावादी तत्वों का चित्रण हुआ है। बल्कि कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा की कविता के तत्वों से ही छायावादी काव्य के तत्वों का निर्धारण किया जा सकता है।

2.6 सारांश

हिन्दी का छायावादी काव्य प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय में लिखा जा रहा था। इसलिए छायावादी कविता में देश और दुनिया की हलचलें उपस्थित हैं। किन्तु छायावादी कविता की संवेदना सांस्कृतिक है, राजनीतिक नहीं। इसीलिए छायावादी कविता के सरोकार अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक धाराओं की तरह सतह पर नहीं दिखते। छायावादी कविता की व्यजंना स्थूल नहीं सूक्ष्म है। मुख्य रुप से देखें तो छायावाद का समय शक्ति के संधान का समय है। शक्ति की मौलिक कल्पना का समय है। शक्ति का संधान प्रत्येक क्षेत्र में अपने–अपने ढंग से हो रहा था। सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य गोखले–गाँधी अपने ढंग से कर रहे थे, वही कार्य छायावादी कवि अपनी तरह से कर रहे थे।

छायावादी कविता में राष्ट्रीयता, देश की स्वाधीनता का भाव, गाँधीवादी विचारों के प्रति लगाव, अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों के प्रति आक्रोश का भाव उपलब्ध है। वर्षों की दासता से मुक्ति की आकांक्षा में पूरा देश खड़ा हो गया था। आधुनिक शिक्षा और चेतना ने भारतीय बुद्धिजीवियों के सामने सोच–समझ के नये दरवाजे खोल दिये थे। भारतीय जनमानस में आये इन परिवर्तनों को छायावादी कवियों ने प्रमुख काव्य–स्वर बनाया।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि हैं। उनकी कविता में समूची भारतीय परम्परा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष अपने पूरे वैभव के साथ आये है। प्रसाद मुख्यत: सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की विडम्बना, भटकाव और विचलन की पहचान करते हैं तथा एक प्रखर चेतना से युक्त मानव एवं समरस समाज के निर्माण में अपना योगदान देते हैं। प्रसाद का रचना संसार उनके जीवन-दर्शन की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

प्रसाद के काव्य में स्त्री का स्वायत्त और गरिमापूर्ण चित्रण हुआ है। प्रसाद के काव्य में चित्रित स्त्री शक्ति, शील और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। वह बाह्य रूप में आकर्षक है तो आन्तरिक रूप से वह प्रेम, दया, करुणा, ममता, क्षमा और माधुर्य की स्रोत भी है। प्रसाद स्त्री के उस रूप का चित्रण करते है जहां वह पुरुष के अधिकार से अलग अपनी स्वायत्त छवि के साथ खड़ी होती है, और पुरुष को श्रेष्ठ और सुन्दर का मार्ग दिखाती है।

हिन्दी साहित्य में छायावादी काव्य एक नयी दिशा, पहचान और स्वर के लिए जाना जाता है। यह ऐसे समय की कविता है जब प्रथम विश्वयुद्ध की घटना हो चुकी थी तथा भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन निरंतर जोर पकड़ रहा था। अत: छायावादी कवि भी अपने युग से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इस काल के प्रमुख लेखकों प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी वर्मा ने आम आदमी के साथ अपनी काव्य यात्रा को शुरू किया।

सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद के एक ऐसे कवि हैं जिन्हें प्रकृति चित्रण में सर्वाधिक सफलता मिली है। पन्त का प्रारम्भिक जीवन अल्मोड़ा (उत्तराखंड) के कौसानी के सुरम्य वातावरण में बीता। जिसका प्रभाव उनके जीवन और काव्य सभी पर पड़ा। पन्त की कविता में प्रकृति मनमोहक है एवं उसकी नैसर्गिक सुन्दरता को विशेष रूप से चित्रित किया गया है। पन्त के लिए प्रकृति माधुर्य, सुकुमारता, प्रणय, प्रेरणा और समर्पण आदि का पर्याय है।

भाषा के माध्यम से ही कवि अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करता है। काव्य के कथ्य की सम्प्रेषणीयता का आधार भाषा है। इस दृष्टि से देखें तो सुमित्रानन्दन पन्त की कविता में भाषा के प्रयोग को लेकर अत्यंत सजगता लक्षित की जाती है। पन्त की कविता और उसकी कलात्मक सफलता में उनके द्वारा प्रयुक्त काव्य भाषा का सर्वाधिक योगदान है। पन्त ने अपनी अभिव्यंजना प्रधान और स्वाभाविक भाषा के द्वारा द्विवेदीयुगीन व्याकरण के शुष्क बंधनों में जकड़ी खड़ी बोली को समृद्ध किया। वे अपने प्रसिद्ध काव्य-संग्रह 'पल्लव' की भूमिका में कहते हैं कि "खड़ी बोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदी युग जिस जागरण का प्रारम्भ था, हमारा युग उसके विकास का समारम्भ था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद ही नहीं समूची हिन्दी कविता में अपना एक खास स्थान और महत्व रखने वाले कवि हैं। छायावादी कवियों में जितनी अधिक चर्चा निराला की हुई है, उतनी शायद ही किसी अन्य कवि की हुई हो। निराला का लेखन-काल छायावाद से लेकर नई कविता के बाद तक विस्तृत है। उनकी कविता में विकास की निरन्तरता को आसानी से लक्षित किया जा सकता है। वे किसी धारा या वाद के बंधन में बंधने वाले कवि नहीं थे, फिर भी उनकी कविता में छायावादी काव्य तत्वों की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

निराला की प्रगति और विद्रोह की चेतना पारिवारिक स्तर भी देखने को मिलती है। यह सर्वविदित है कि निराला की आर्थिक स्थिति अत्यंत खराब हो गयी थी। अभाव और

दुख की स्थिति में निराला ने अपनी पुत्री सरोज का विवाह किया। पुत्री का विवाह उन्होंने परिवार, कुल–खानदान की परम्परा को तोड़ते हुए लीक से हट कर किया।

महादेवी का स्थान छायावादी काव्य में विशिष्ट है। जीवन के तमाम झंझावातों के बीच उनका सृजन विकसित होता रहा। पति श्री रूपनारायण वर्मा के असमय निधन होने के बाद उनके जीवन में एक खास तरह का वैराग्य उत्पन्न हुआ। किन्तु यह वैराग्य उन्हें दुनिया से विलग नहीं करता बल्कि समभाव के साथ जीवन–जगत से जोड़ता है। उनका उदार, मानवतावादी और मिलनसार व्यक्तित्व बनकर रचनाओं में व्यक्त हुआ। वे अब जीवन को कर्ताभाव से नहीं साक्षी भाव के साथ जीने में विश्वास करने लगी थीं। उनके भीतर पीड़ित मानवता के प्रति, स्त्री जीवन के दुखों के प्रति, गरीब, शोषित लोगों के प्रति उनके भीतर अपार करुणा प्रवाहित होती रहती।

महादेवी वर्मा के काव्य में मौजूद विरह–वेदना के कारण ही उन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' कहा जाता है। महादेवी वर्मा के काव्य पर बौद्ध–दर्शन का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जो आदि से अन्त तक उनकी काव्य–चेतना को संचालित करता रहा है। महादेवी वर्मा की विरह–वेदना केवल वाणी का आयोजन नहीं है, वह उनके हृदय का स्थायी–भाव है। उनका विरह एक ओर प्रेम का उज्ज्वल स्वरूप है तो वहीं दूसरी ओर वह प्रेम की कसौटी भी है। महादेवी वर्मा के काव्य में चित्रित विरह–वेदना हिन्दी साहित्य की उस महान परम्परा का विकास है, जिसमें विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, मतिराम, बिहारी, घनानंद और भारतेंदु जैसे रचनाकार हैं।

महादेवी वर्मा की कविता में विरह और वेदना स्थायी–भाव की तरह है। महादेवी का विरह–तत्व उनके मनोजगत का आत्यांतिक भाव है, जो उनकी कविता में आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहता है। यहां यह ध्यान रखना होगा कि महादेवी वर्मा की कविता में चित्रित विरह–तत्व जीवन और कर्म विरोधी न होकर जीवन की प्रेरणा बन जाता है, इसीलिए वह वरेण्य है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **यथार्थ** : सच्चाई।
- **अभिलाषा** : इच्छा।
- **अस्तित्व** : वजूद, सत्ता।
- **विसर्जित** : बहाना, प्रवाहित।
- **विरह** : बिछुड़ना, दुख।
- **शुष्क** : सूखा।
- **विद्यमान** : उपस्थित।
- **अनुराग** : प्रेम।
- **स्निग्ध** : मुलायम।
- **आग्रह** : निवेदन।
- **मृदुल** : कोमल।

- **आगमन** : आना।
- **गात** : शरीर।
- **वसन** : वस्त्र।
- **विषमता** : बुराई।
- **वात्सल्य** : ममता।

2.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 30 जनवरी, 1889 को वाराणसी (उ.प्र.) में
2. सन् 1931 को
3. (क) सही, (ख) गलत
4. गोसाईं दत्त
5. सन् 1960 में 'कला और बूढ़ा चांद' काव्य संग्रह के लिए
6. (क) गलत, (ख) सही
7. छायावादी युग के
8. मनोहरा देवी
9. (क) सही, (ख) गलत
10. महादेवी वर्मा को
11. 1918 ई. से 1936 ई. तक
12. (क) सही, (ख) गलत

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. छायावाद के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. जयशंकर प्रसाद की काव्यगत विशेषताएं बताइए।
3. सुमित्रानंदन पंत की प्रमुख रचनाओं का वर्णन कीजिए।
4. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ओर छायावाद पर टिप्पणी कीजिए।
5. महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की मीरा क्यों कहा जाता है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमुख छायावादी कवियों की प्रतिनिधि कविताओं का विश्लेषण कीजिए।
2. छायावादी कविता के कथ्य, सौंदर्य और काव्यगत विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
3. जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय देते हुए प्रसाद काव्य में जागरण के स्वर कौन से हैं, उनका उल्लेख कीजिए।

4. सुमित्रानंदन पन्त के काव्य में प्रकृति की भूमिका को स्पष्ट करते हुए उनकी प्रमुख रचनाओं का वर्णन कीजिए।

5. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

2.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- जयशंकर प्रसाद, *कामायनी* (महाकाव्य), साहित्यसागर, जयपुर संस्करण : 2001
- प्रेमशंकर, *प्रसाद का काव्य,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
- प्रभाकर श्रोत्रिय, *जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004
- नामवर सिंह, *छायावाद,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
- रामविलास शर्मा, *निराला की साहित्य साधना,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
- नन्द दुलारे वाजपेयी, *कवि निराला,* मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979
- डॉ. रमेशचन्द्र साह – संपादक, *निराला संचयिता,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–02, प्रथम संस्करण : 2001
- विजय बहादुर सिंह, *महादेवी की कविता का नेपथ्य,* किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
- डॉ. केदारनाथ सिंह, *कल्पना और छायावाद,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- डॉ. नगेन्द्र, *सुमित्रानन्दन पंत,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

इकाई 3 आधुनिक कवि-II

3.1

3.4 मुक्तिबोध : सामान्य परिचय

मुक्तिबोध का पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है। मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि हैं। मुक्तिबोध का जन्म ग्वालियर (मध्यप्रदेश) के श्यौपुर में 13 नवम्बर, 1917 को हुआ। मुक्तिबोध के पिता माधव मुक्तिबोध इंस्पेक्टर थे, जो उज्जैन में इसी पद से सेवानिवृत्त हुए। मुक्तिबोध की माता बुंदेलखण्ड के एक किसान परिवार से थीं। जिनका मुक्तिबोध पर गहरा प्रभाव था। मुक्तिबोध चार भाई थे। मुक्तिबोध से छोटे भाई शरतचन्द्र मराठी भाषा में लिखी गयी अपनी कविताओं से काफी प्रसिद्ध हुए। मुक्तिबोध की मां पढ़ी-लिखी थीं, जिनके कारण परिवार में शिक्षा और ज्ञान के प्रति सकारात्मक माहौल था। मुक्तिबोध की प्रारम्भिक शिक्षा उज्जैन में हुई। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ही मुक्तिबोध अपने भीतर अपने समय, युग और विचारों को लेकर उथल-पुथल का भाव महसूस करने लगे थे। मुक्तिबोध की दुनिया प्रकृति और मध्यवर्गीय जीवन के कटु यथार्थ से निर्मित हो रही थी।

मुक्तिबोध की रुचि और जिज्ञासाएं उन्हें अपने समय की बौद्धिक गतिविधियों और हलचलों तक ले गयीं। उनका मन मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र की गुत्थियों में अधिक लगता था। धीरे-धीरे उनकी पहुंच श्रेष्ठ विदेशी लेखन तक हुई। जिससे उनकी सोच-समझ का दायरा बढ़ा। चेतना के कई अन्य आयाम खुले। मुक्तिबोध ने सामाजिक-पारिवारिक बंधनों की परवाह न करते हुए 1938 में प्रेम विवाह किया। विवाह के बाद मुक्तिबोध को अब आर्थिक मोर्चे पर भी संघर्ष करना पड़ गया। 1938 में ही वे इंदौर के होलकर कॉलेज से स्नातक कर उज्जैन के मार्डन स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए।

अपने आर्थिक एवं वैचारिक संघर्षों के साथ मुक्तिबोध शुजालपुर, कलकत्ता, इन्दौर, बम्बई, बंगलौर, बनारस, जबलपुर आदि शहरों में भटकते, नौकरियां करते रहे। स्कूल की अध्यापकी से लेकर वायुसेना तक में नौकरी की। पत्रकारिता की। पार्टी में कार्य किया। 1949 में नागपुर आये। सूचना तथा प्रकाशन विभाग, आकाशवाणी में काम किया। उस समय के चर्चित पत्र 'नया खून' में कॉलम लिखा। किन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उन दिनों मुक्तिबोध आर्थिक एवं रचनात्मक दोनों तरह के संकटों से जूझ रहे थे। मित्रों के आग्रह पर 1954 में हिन्दी में एम.ए. किया, और 1958 में दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांद गांव में प्राध्यापक हो गये। कॉलेज की नौकरी के बाद परिवार की आर्थिक स्थिति कुछ संभली। किन्तु उनका रचनात्मक जद्दोजहद चलता रहा। अन्ततः लम्बी बीमारी के बाद 11 सितम्बर, 1964 को दिल्ली में मुक्तिबोध का निधन हो गया।

मुक्तिबोध की रचनाएं

काव्य संग्रह

- चांद का मुंह टेढ़ा है
- *भूरी-भूरी खाक धूल*

आलोचना

- कामायनी : एक पुनर्विचार
- भारत : इतिहास और संस्कृति

- नई कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध
- नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र
- एक साहित्यिक की डायरी

कथा साहित्य

- काठ का सपना
- विपात्र
- सतह से उठता

3.4.1 मुक्तिबोध : पाठ्यांश – मुझे कदम–कदम पर

मुझे कदम–कदम पर
चौराहे मिलते हैं
बाहें फैलाए!!
एक पैर रखता हूं
कि सौ राहें फूटतीं,
मैं उन सब पर से गुजरना चाहता हूं
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने...
सब सच्चे लगते हैं,
अजीब–सी अकुलाहट दिल में उभरती है,
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूं,
जाने क्या मिल जाए!!

शब्दार्थ : तजुर्बा– अनुभव

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां 'नयी कविता' के दौर के प्रसिद्ध कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता 'मुझे कदम कदम पर' से ली गयी हैं। मुक्तिबोध आधुनिक सभ्यता की त्रासदी को सर्वाधिक प्रामाणिकता और सूक्ष्मता से काव्यात्मक अभिव्यक्ति देने वाले मार्क्सवादी कवि हैं। इस कविता में कविता की रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। मुक्तिबोध का मानना है कि विषय चयन से लेकर उसके निर्वाह तक में कवि सचेत रूप से सक्रिय रहता है। विषयों के चयन में आभिजात्य सौंदर्याभिरुचि और पूंजीवादी मानस के प्रभुत्व को चुनौती देते हुए कवि कहता है कि भले ही आपके पास विषयों की कमी हो पर मेरे पास तो अपार विषय हैं, क्योंकि समाज में अपार कष्ट है। आभिजात्य मानस के कवियों के पास विषय का अभाव होता है, इसलिए वे कृत्रिम विषयों पर कविताएं लिखते हैं। इसकी मूल वजह यह है कि उनके पास ऐसी सामाजिक दृष्टि नहीं है जो समाज की पीड़ा को महसूस कर सके। व्यक्तिवाद से ग्रसित ये लोग आत्म के बाहर देख ही नहीं पाते, जबकि समाजवादी–यथार्थवाद की विचार–परंपरा का अनुसरण करने वाले मुक्तिबोध के आत्म का इतना प्रसरण है कि उन्हें

'प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा' और 'हर एक छाती में आत्मा अधीरा' दिखाई पड़ता है। इसलिए कवि कहता है कि आज की मुश्किल यह नहीं है कि कवियों के पास विषय की कमी है बल्कि उसका आधिक्य ही उसे सताता है। मुक्तिबोध वस्तुपरक सत्य–परायणता और वास्तविक विश्वदृष्टि के विकास को कलाकार के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका मानना है कि कलाकार को अनिवार्य रूप से शोषक शक्तियों के खिलाफ और शोषित मनुष्यता का पक्षधर होना चाहिए। वर्तमान पूंजीवादी समाज में विशाल मानवता शोषण का शिकार है और मुट्ठी भर लोगों के पास दुनिया की अधिकांश पूंजी है। तब ऐसे में कवि की जिम्मेदारी बहुत अधिक बढ़ जाती है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि अपनी रचना प्रक्रिया का उद्घाटन करते हुए कहता है कि काव्य–विषय की तलाश या विशिष्ट जीवनानुभवों को प्राप्त करने के लिए मुझे इंतजार नहीं करना पड़ता। मुझे प्रत्येक कदम पर कुछ नया जीवनानुभव मिलता है और मैं उसके भीतर उतर जाना चाहता हूं। इन पंक्तियों में आभिजात्य सौंदर्याभिरुचि पर व्यंग्य करते हुए सामान्य सी दिखने वाली वस्तु को भी महत्व प्रदान करने का आग्रह किया गया है।

व्याख्या : प्रस्तुत कविता में कवि ने मनुष्य को सृजन पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी है। वह कहता है कि जब मैं अपने कर्तव्य के रास्ते में बढ़ता हूं तो मुझे हर एक कदम पर कई रास्ते मिलते हैं और मैं उन सब पर से गुजरना चाहता हूं। कवि का तात्पर्य यह है कि जब मैं कविता लिखने के लिए आगे बढ़ता हूं तो मुझे प्रत्येक क्षण अनेक काव्य–विषय आकर्षित और उद्वेलित करते हुए मिलते हैं और मैं उन सभी विषयों पर कविता लिखना चाहता हूं। सबसे पहली मुश्किल तो काव्य–विषय के चयन में आती है लेकिन जब मैं उनमें से किसी एक पर आगे बढ़ता हूं तो आगे चलते ही उसके भीतर भी अनेक राहें मिलती हैं। मतलब यह कि उस विषय पर कविता लिखते समय विचार, भाव, बिंब, प्रतीक आदि के स्तर पर मन में अनेक विचार कौंधते हैं। पर कवि विचार, अनुभव, संवेदना और शिल्प के इस बहुलता एवं वैविध्य से बेचैन नहीं होता बल्कि आश्वस्त होता है और कहता है कि ये सब मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। इन सबसे गुजरने पर मिलने वाले अनुभवों और सपनों में एक किस्म की सत्यता महसूस होती है। अर्थात आशा के कई स्रोत आगे बढ़कर मेरा स्वागत करते हैं। मझे ये उत्साह भरे रास्ते बहुत अच्छे लगते हैं। जीवन की विसंगतियों से जूझने में ये मेरा मार्गदर्शन करते हैं। इन अनुभवों को मैं अपने विकास के लिए इस्तेमाल करता हूं। ये सभी मुझे बहुत आत्मीय और सच्चे लगते हैं। मेरे हृदय में ये नवीन विचार बेचैनी पैदा करते हैं जिससे मुझे कुछ नया सोचने और करने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए मैं कुछ और नया जानना चाहता हूं क्योंकि जितना ज्ञान प्राप्त करूंगा उतना ही अपने को बृहत्तर बना सकूंगा। जब भी हम स्व की सीमाओं से बाहर निकलते हैं और खुद को बृहत्तर समाज से जोड़ते हुए उसका विस्तार करते हैं तो हमारी विश्वदृष्टि समृद्ध होती है। यह विश्वदृष्टि हमारी समझ में गहराई लाती है और कविता को व्यापक आयाम देती है। मुक्तिबोध का मानना है कि कवि जितनी गहराई से जनता से जुड़ेगा उतनी ही उसकी संवेदना विस्तृत होती जाएगी। संवेदना के विस्तार के साथ ही उसका ज्ञान भी बढ़ेगा और उसकी कविता भाव के स्तर पर गहरी होती जाएगी। अंतिम पंक्तियों में मुक्तिबोध कहते हैं कि काव्य–विषय को गहराई से जानने के क्रम में मेरे दिल में अजीब किस्म की अकुलाहट उभरती है। यह अकुलाहट नवीन सत्य के

उद्घाटन का है, इसलिए इस सत्य को जानने के लिए वह उसके भीतर और अधिक उतरना चाहता है कि जाने क्या मिल जाए। वास्तव में कवि सत्य का अन्वेषक होता है। काव्य–विषय के भीतर वह जितनी गहराई से जुड़ता जाता है उतना ही वह नवीन सत्य को प्राप्त करता जाता है।

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य पीड़ा है,
पलभर में मैं सबमें से गुजरना चाहता हूं,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूं,
इस तरह खुद को ही दिए–दिए फिरता हूं,
अजीब है जिंदगी!!
बेवकूफ बनने की खातिर ही
सब तरफ अपने को लिए–लिए फिरता हूं,
और यह देख–देख बड़ा मजा आता है
कि मैं ठगा जाता हूं...
हृदय में मेरे ही
प्रसन्नचित्त एक मूर्ख बैठा है
हंस–हंसकर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत... स्वायत्त हुआ जाता है।

शब्दार्थ : अधीरा– धैर्यहीन, सुस्मित– मुस्कान भरे चेहरे के पीछे, विमल– निर्मल, शुद्ध, सदानीरा– साल भर जल से भरी रहने वाली नदी, महाकाव्य पीड़ा– ऐसी पीड़ा जिसमे समस्त मानवता को द्रवित कर लेने की क्षमता हो, गुजरना– भोगना, महसूस करना, तिर आना– तैर कर पानी से बाहर निकल आना, अश्रुपूर्ण– आंसुओं से भरा हुआ, मत्त– पागल, जगत– संसार, स्वायत्त– जिसका अपने पर अधिकार हो।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि अपने भीतर के श्रेष्ठता बोध के ऊपर तंज कस रहा है। उसको लगता है कि मैं कुछ रचता नहीं हूं बल्कि यह समाज है जो मेरे भीतर सृजन की चेतना पैदा करता है। इसमें काव्य–लेखन की पारंपरिक धारणा को अस्वीकार कर इस मान्यता की स्थापना है कि आम आदमी के जीवन में महाकाव्य की संभावना विद्यमान है।

व्याख्या : कवि आगे कहता है कि जीवन के इस पथ पर मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर एक चमकता हीरा है। तात्पर्य यह कि जिन लोगों को हम पत्थर की तरह अनुपयोगी और जड़ समझते हैं उनके भीतर भी संवेदना की बेजोड़ चमक है। उनकी आत्मा में पवित्रता और चेतना में एक चमक है। कवि को लगता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की छाती में एक अधीर आत्मा है जो अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रही है। मुक्तिबोध को लगता है कि एक कवि के रूप में उनका दायित्व है कि वे उसकी पीड़ा को काव्यात्मक परिणति तक पहुंचाए। कवि समाज के बीच से अपनी कविता के विषय निकाल रहा है। इसी क्रम में वह हर मनुष्य की पीड़ा को समझ रहा है और उनके दुःख से दुखी हो रहा है। वह बड़े व्यापक स्तर पर समाज को समझने का प्रयास करता है। उसको लगता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की मुस्कान में संवेदना और भावना का एक पवित्र प्रवाह है। उसकी मुस्कान उसके संघर्षों को व्यक्त करती है। इसलिए कवि को लगता है कि समाज की कोई भी आवाज उपेक्षित करने योग्य नहीं है बल्कि उसके भीतर उतरने की आवश्यकता है। महाकाव्य की प्राचीन अवधारणा को चुनौती देते हुए मुक्तिबोध कहते हैं कि मुझे समाज के आभिजात्य वर्ग की वाणी में ही महाकाव्य का स्वर नहीं सुनायी नहीं पड़ता बल्कि समाज के उपेक्षित–से–उपेक्षित जन की वाणी में भी महाकाव्यात्मक पीड़ा सुनाई पड़ती है। कवि की आकांक्षा है कि वह पलभर में ही इन समस्त पीड़ाओं को आत्मसात कर ले। वह जीवन के विस्तृत फलक को महसूस करना चाहता है। वह प्रत्येक मनुष्य के हृदय में डूब कर निकलना चाहता है। इस विशाल संसार के हर एक अनुभव को लेखक महसूस करना चाहता है, अनुभव के जिस संसार को अब तक नहीं जी सका है उनको पाने के लिए वह अबतक संघर्ष कर रहा है। इसीलिए वह अहं का विलयन कर अपने आपको सबको दे देने के लिए तत्पर है ताकि अन्य के जीवनानुभव का साधारणीकरण कर सके। कुल मिलाकर, कवि कला की पारंपरिक मान्यता को अस्वीकार करते हुए अपनी काव्य–संवेदना का विस्तार और काव्यात्मक अभिव्यक्ति को नवीन ऊंचाई प्रदान करना चाहता है। इसीलिए उसे जिन्दगी बहुत रहस्यपूर्ण लगती है। कई बार उसे इस जगत के लोगों द्वारा धोखा भी मिलता है पर अपने आपको ठगा हुआ देखकर भी लेखक को आनंद की प्राप्ति हो रही है।

काव्य–लेखन की एक धारा यह मानती है कि साहित्य समाज को दिशा दिखाने का काम करता है। इस विचार को अपनाते हुए कुछ लोग खुद को समाज और आम जन से श्रेष्ठ मानने लगते हैं और अहंकार से भर उठते हैं। मुक्तिबोध इस मनःस्थिति का विरोध करते हुए कहते हैं कि मैं चारों तरफ तो बेवकूफ बनने के लिए घूमता रहता हूं। मुझे लोगों को ज्ञान देने में उतना आनन्द नहीं आता जितना उनके द्वारा खुद को ठगा जाने में। उनके समक्ष खुद को चरम अज्ञानी के रूप में प्रस्तुत कर मैं खुद को आनन्दित महसूस करता हूं। कवि कहता कि असल में मेरे दिल के भीतर एक प्रसन्नचित मूर्ख बैठा है जो लोगों द्वारा किए जाने वाले इस आचरण से हंसते–हंसते लोट–पोट हो जाता है। वह इतना हंसता है कि उसकी आंखों में आंसू भर जाते हैं। उसकी यह बेबाक और बेपरवान हंसी इसलिए भी है कि उसे लगता है कि अब यह दुनिया समझदार हो गयी है और वह अब अपने पैरों पर खड़ा हो सकने में समर्थ है।

कहानियां लेकर और
मुझको कुछ देकर ये चौराहे फैलते
जहां जरा खड़े होकर
बातें कुछ करता हूं
.... उपन्यास मिल जाते
दुःख की कथाएं, तरह-तरह की शिकायतें
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
जमाने की जानदार सूरें व आयतें
सुनने को मिलती हैं!
कविताएं मुसकरा लाग-डांट करती हैं
प्यार की बात करती हैं।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियां
श्रद्धाएं चढ़ती हैं!!
घबराए प्रतीक और मुसकाते रूप-चित्र
लेकर मैं घर पर जब लौटता.....
उपमाएं द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें
जीना ही चाहिए।
घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बांहें फैलाए रोज मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएं निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप-दृश्यवाले सौ-सौ विषय
रोज-रोज मिलते हैं.....
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है!!

शब्दार्थ : अहंकार विश्लेषण– किसी के अहंकार की वजहों पर विचार करना, चारित्रिक आख्यान– किसी के चरित्र को निरुपित करने वाली कहानी, सूरें– छन्द, कविता, आयतें– कुरान के वाक्य, प्रतीक– किसी वस्तु, चित्र, विशिष्ट चिह्न को प्रतीक कहते हैं जो संबंध, सादृश्यता या परंपरा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है, उपमा– अर्थालंकार का एक भेद जिसमें दो वस्तुओं में भेद होते हुए भी धर्मगत समता दिखाई जाए।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : मुक्तिबोध ने इन पंक्तियों में वर्तमान पूंजीवादी समाज में कवि के सामने प्रस्तुत होने वाली चुनौतियों का वर्णन किया है। उनका कहना है कि आज के कवि के सामने इतने विषय हैं, और उन विषयों के इतने आयाम हैं कि उन सबको समेटते हुए कविता लिखना उसके लिए एक बहुत ही जटिल कार्य हो गया है।

व्याख्या : कवि अंत में कहता है कि समाज के ये चौराहे मुझे कुछ कहानियां देकर मेरी नजर में और विस्तृत हो जाते हैं और जिस भी जगह पर मैं खड़ा होकर किसी से दो चार–बातें कर लेता हूं, मुझे एक उपन्यास मिल जाता है। कवि का मूल तात्पर्य यह है कि रचनाएं इस संसार में हर जगह फैली हुई हैं, रचनाकार को बस उसे बटोरना है। सामान्य–से–सामान्य दिखने वाले व्यक्ति के भीतर भी एक महान कहानी या उपन्यास का प्लॉट पसरा पड़ा है। अपनी बात को विस्तार देते हुए वह कहता है कि जब कोई रचनाकार आम जन से जुड़ता है तो उसे दुख की अनेक कथाएं, तरह–तरह की शिकायतें सुनने को मिलती हैं। उसे तमाम लोगों के अहंकार का दर्शन होता है और कई चरित्रों की कहानियां भी सुनने को मिलती हैं। इस संसार के लोगों के जीवन से निर्मित होने वाली कविताएं और कुरान की आयतों की तरह पवित्र उनके कथन भी सुनने को मिलते हैं। कहने का मतलब है कि कविता के अनेकानेक पक्ष समाज से ही जन्म लेते हैं इसलिए कवि को जीवन से सीधे जुड़ने की जरूरत है। यदि कोई रचनाकार आम जन से दूर है तो वह महान कविता की रचना नहीं कर सकता। आम जन के अनुभव–कथन की तुलना सूरें और आयतों से कर कवि ने साधारण जन की महत्ता की स्थापना की है। उसके लिए आम आदमी उपेक्षा का नहीं बल्कि आदर का पात्र है।

काव्यात्मक शैली में कवि कहता है कि चौराहे पर मेरी मुलाकात कविताओं से हुई जो मुझसे प्यार जताते हुए बात करती हैं और मुझे डांटती भी हैं। यहां कवि कविता का मानवीकरण कर रहा है। मनुष्य की श्रद्धा का मानवीकरण करते हुए वह कहता है कि मनुष्य की श्रद्धा जीवन की सीढ़ियां चढ़ रही है। इन सीढ़ियों में जीवन और मृत्यु दोनों की सीढ़ियां हैं। तात्पर्य यह कि कवि ने जीवन के प्रति लोगों की श्रद्धा को जीते–मरते दोनों रूपों में देखा है। यही कारण है कि मुक्तिबोध की कविता अंधेरे से आरंभ होकर उजाले में समाप्त होती है। उनके भीतर की उम्मीद कहीं समाप्त नहीं होती। कवि कहता है कि अपने आसपास के जीवन से जुड़कर जब मैं घर की ओर लौटता हूं अर्थात बाह्य संसार के अनुभवों के साथ जब मैं अपने आप की ओर मुड़ता हूं तो तमाम घबराए हुए प्रतीक, मुसकाते रूप–चित्र, उपमाएं मुझसे निवेदन करती हैं कि तुम्हें अभी सौ बरस और जीना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे पास जीवनानुभव का जितना खजाना भरा पड़ा है उसको अभिव्यक्त करने के लिए कम–से–कम इतना समय तो चाहिए। इन पंक्तियों में कवि अपनी जिजीविषा शक्ति और काव्यानुभव की व्यापकता को वाणी दे रहा है।

कविता के अंत में मुक्तिबोध कहते हैं कि काव्य-रचना की प्रक्रिया के दौरान आभ्यंतरिक संसार में एक गहरा संघर्ष निरंतर सक्रिय रहता है कि किस विषय का चयन किया जाए और उसके साथ न्याय कैसे किया जाए। आधुनिक समाज इतना जटिल है कि यदि किसी एक विषय पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो उसके भीतर से एक अन्य विषय निकल पड़ता है। सामंतवादी समाज सरल समाज था जबकि पूंजीवादी समाज बेहद जटिल समाज है। इसमें एक चीज का सिरा दूसरे से जुड़ा हुआ है। इस जटिलता को ही कवि इन पंक्तियों में अभिव्यक्त कर रहा है। अंत में मुक्तिबोध लगभग घोषणा के स्वर में कहते हैं कि आज के कवि की मुश्किल यह नहीं है कि उसके पास विषय का अभाव है बल्कि उसकी कठिनाई यह है कि उसके सामने इतने सारे विषय हैं और वे इतने जटिल हैं कि कवि उनके साथ न्याय नहीं कर पाता है।

3.4.2 मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताएं

गजानन माधव मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी कविता के विशिष्ट कवि हैं। वे अपनी कविताओं के अभिनव कथ्य, नवीन शिल्प के लिए अद्वितीय हैं। मुक्तिबोध युग की बेचैनी के कवि हैं। वे अपनी कविताओं में सामाजिक असमानता, राजनीतिक विद्रूपता, पूंजी का दुश्चक्र, राजनीति और पूंजी का गठजोड़, मध्यवर्गीय मनुष्य का स्वार्थ और कायरता आदि पर अपनी बेबाक राय रखते हैं। वस्तुतः मुक्तिबोध एक खुशहाल और शोषणविहीन समाज चाहते थे, जिसमें सबको अपना मुक्ततम और श्रेष्ठतम विकास करने का अवसर मिले। उन्हें वर्ग–संघर्ष द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना पर अपार भरोसा था। मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

संवेदनशील समाजबोध : मुक्तिबोध के समाजबोध का वैचारिक आधार मार्क्स, गांधी और तिलक जैसे विचारकों के विचार और विभिन्न क्रान्तिकारी आंदोलन हैं। मुक्तिबोध की निगाह में समाज के वे हिस्से हैं जो कई कारणों से मुख्यधारा से बाहर हाशिये की जिन्दगी जी रहे हैं। मुक्तिबोध प्रत्येक प्रकार के शोषण और अराजकता के खिलाफ हैं। उनकी कविता में भारत के वे सारे लोग, वस्तुएं, घटनाएं आते हैं, जो भारत के भूगोल में तो हैं किन्तु उनका जिक्र कहीं नहीं है। विभिन्न कलाओं के कलाकार, कारखाने, धुआं उगलती चिमनियां, खण्डहर, नारकीय जिन्दगी जीते हुए लोग, श्रमिक, मजदूर, कमरतोड़ मेहनत करती स्त्रियां, मिस्त्री, विटामिन की गोलियों पर जिन्दा लोग, व्यभिचारी का बिस्तर बनता हुआ मध्यवर्ग, कवि, साहित्यकार, राजनेता, पूंजीपति, मशहूर हत्यारा डोमा जी उस्ताद, व्यवसायी और ठेले खोमचे वाले लोग आदि की एक पूरी दुनिया उनकी कविताओं में उपस्थित है। उदाहरण के लिए 'अंधेरे में' कविता का एक दृश्य देखा जा सकता है–

विचित्र प्रोसेशन,

गम्भीर क्विक मार्च...

कलाबत्तूवाली काली जरीदार ड्रैस पहने

चमकदार बैण्ड–दल,

.....

संगीन नोकों का चमकता जंगल,

चल रही पदचाप, तालबद्ध दीर्घ पांत

टैंक–दल, मोर्टार, आर्टिलरी, सन्नद्ध,

धीरे–धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना।

अन्तर–बाह्य का द्वन्द्व : मुक्तिबोध द्वन्द्वात्मकता को एक विकासशील सिद्धान्त तक के रूप में लेते हैं। अपनी कविता में वे अन्तर–बाह्य के द्वन्द्वों का संतुलित सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। वह उसके भीतर बाह्य जगत की तमाम घटनाएं गुत्थियों के रूप में घुमड़ती रहती हैं। व्यक्ति और समाज के यथार्थ के बीच एक द्वन्द्व चलता रहता है। यदि इन द्वन्द्वों के बीच एक संतुलित सामंजस्य नहीं होगा तो वह वैयक्तिक और सामाजिक विघटन का कारण बनेगा। मुक्तिबोध अपनी कविता में कहते हैं कि–

जितना ही तीव्र है द्वन्द्व,

क्रियाओं का, घटनाओं का

बाहरी दुनिया में

उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में

चलता है द्वन्द्व।

श्रमशील मनुष्यता का यथार्थ चित्रण : मुक्तिबोध की सहानुभूति श्रमशील जनता के प्रति है। मुक्तिबोध न सिर्फ श्रमशील जनता के जीवन की विडंबनाओं का चित्रण करते हैं, बल्कि वे श्रमशील जनता के श्रम को बेहतर दुनिया के आश्वासन के रूप में देखते हैं। वे श्रम को और उसमें रत मनुष्य को अपनी प्रेरणा के रूप में चित्रित करते हैं। अपनी प्रसिद्ध कविता 'विचार आते हैं' में श्रम को सृजन की बुनियाद बताते हैं–

विचार आते हैं

लिखते समय नहीं

बोझ ढोते वक्त पीठ पर

सिर पर उठाते समय भार

परिश्रम करते समय

चांद उगता है व

पानी में झलमलाने लगता है

हृदय के पानी में।

परम्परा के प्रति विद्रोह का भाव : मुक्तिबोध विचारक कवि हैं। उनकी रचनाओं में चिन्तन की सुव्यवस्थित शृंखला मौजूद है। वे विचारों की, समाज की और साहित्य की परम्परा को जस का तस स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसे तर्क की कसौटी पर रख कर उसकी पुनर्व्याख्या करते हैं। यदि पहले से चली आ रही परम्परा का नये सन्दर्भों में कोई विशेष महत्व नहीं रहता तो वे उस परम्परा से विद्रोह करते हैं। 'मैं तुमसे दूर हूं' कविता में वे इसी तरह का एक परम्पराविहीन प्रयोग करते हुए कहते हैं–

असफलता का धूल कचरा ओढ़े हूं
इसलिए कि वह चक्करदार जीनों पर मिलती है
छल छद्म धन की
किन्तु मैं सीधी-सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूं
जीवन की।
फिर भी मैं अपनी सार्थकता से खिन्न हूं
विष से अप्रसन्न हूं
इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए
वह मेहतर मैं हो नहीं पाता
पर एक रोज कोई भीतर चिल्लाता है
कि कोई काम बुरा नहीं
बशर्ते कि आदमी खरा हो
फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।
रिफ्रिजरेटरों, विटैमिनों, रेडियोग्रेमों के बाहर की
गतियों की दुनिया में
मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में
पेटों की आंतों में न्यूनों की पीड़ा है
छाती के कोषों में रहितों की व्रीड़ा है।

पूंजीवाद के नाश और शोषणमुक्त वर्गविहीन समाज का स्वप्न : मुक्तिबोध का समस्त लेखन शोषणमुक्त और वर्गविहीन समाज की स्थापना का सृजनात्मक प्रयत्न है। मुक्तिबोध का यह विश्वास है कि जब तक दुनिया में शोषण है, हिंसा है, उत्पीड़न है, तब तक वर्गविहीन समाज की स्थापना नहीं हो सकती। मुक्तिबोध शोषण और हिंसा के मूल में पूंजी की भूमिका को उत्तरदायी मानते हैं। पूंजी के संस्थानिक स्वरूप ने ही पूंजीवाद को जन्म दिया है। इसलिए वे शोषण और उत्पीड़न से मुक्त समाज की स्थापना और वर्गविहीन समाज के सपने को साकार करने के लिए पूंजीवाद के नाश की कल्पना करते हैं। अपनी एक कविता 'पूंजीवादी समाज के प्रति' में वे कहते हैं कि–

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।

मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक

अपनी उष्णता में धो चलें अविवेक

तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ

तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

फैंटेसी का प्रयोग : मुक्तिबोध के लिए साहित्य सृजन एक सांस्कृतिक कर्म है। समाज के मूल्य और मान्यताएं इस सांस्कृतिक कर्म का निर्धारण करती हैं। मुक्तिबोध बाह्य जगत के यथार्थ को जो उनके हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है, उसे व्यक्त करने के लिए 'फैंटेसी' का प्रयोग करते हैं। फैंटेसी के माध्यम से वे अपने मानसिक उद्वेलन को कविता में प्रस्तुत करते हैं। फैंटेसी गूढ बिम्बों, प्रतीकों की एक योजना है। इसका समान अर्थ है 'स्वप्न-कथा'। मुक्तिबोध फैंटेसी को कल की वास्तविकता मानते हैं। वे फैंटेसी के माध्यम से मानसिक संकल्प-विकल्प, आशंका, संत्रास, वैचारिक द्वन्द्व को अभिव्यक्त करते हैं। फैंटेसी मानसिक प्रक्रिया है किन्तु वह सामाजिक यथार्थ से जुड़कर उनकी रचना प्रक्रिया को विशिष्ट बना देती है। मुक्तिबोध ने फैंटेसी का प्रयोग अपने काव्य में कर इसे लोकप्रिय बनाया। उनकी एक कविता 'दिमागीगुहा का ओरांगउटांग' फैंटेसी का श्रेष्ठतम उदाहरण है-

स्वप्न के भीतर स्वप्न,

विचारधारा के भीतर और

एक अन्य

सघन विचारधारा प्रच्छन!!

कथ्य के भीतर एक अनुरोधी

विरुद्ध विपरीत,

नेपथ्य संगीत!!

मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क

उसके भी अन्दर एक और कक्ष

कक्ष के भीतर

एक गुप्त प्रकोष्ठ और

कोठे के सांवले गुहान्धकार में

मजबूत...सन्दूक

दृढ, भारी-भरकम

और उस सन्दूक के भीतर कोई बन्द है

यक्ष

या कि ओरांगउटांग हाय

अरे! डर यह है...

न औरांग...उटांग कहीं छूट जाय

कहीं प्रत्यक्ष न यक्ष हो।

भाषा, प्रतीक और बिम्बों का अभिनव प्रयोग : मुक्तिबोध की कविताओं की भाषा उनके कथ्य के अनुरूप है। उनकी काव्य–भाषा जीवनानुभवों को सफलता के साथ अभिव्यक्त करती है। मुक्तिबोध अभिव्यक्ति को परम लक्ष्य मानते हुए 'अंधेरे में' कविता में कहते हैं–

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे।

तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।

मुक्तिबोध अपने जटिल और त्रासद अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भाषा की शक्ति और उसकी समस्त संभावनाओं का दोहन करते हैं। हिन्दी के नये और अप्रचलित शब्दों के साथ ही बोलियों के शब्द, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, मराठी आदि भाषाओं के शब्दों का सार्थक प्रयोग करते हैं। भाषा प्रयोग के सन्दर्भ में मुक्तिबोध की इस लोकतांत्रिक पद्धति के कारण कथ्य की सम्प्रेषणीयता में एक विशिष्ट प्रवाह लक्षित किया जा सकता है। मुक्तिबोध अपने भावों को व्यक्त करने के लिए कई प्रकार के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे, रक्ताल, अंगारी, अंधियाला, रोगिला, सटर–पटर, धड़–धडाम, लहरीली, आकाशी, दुकेला आदि। मुक्तिबोध ने कथ्य के अनुसार अंग्रेजी, उर्दू के भी शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे, इलेक्ट्रान, रेडियो–एक्टिव, मार्शल लॉ, क्विक मार्च, मोर्टार, क्रास एक्जामिन हिम थॉरोली, आर्टिलरी, प्रोसेशन जैसे अंग्रेजी शब्द तो वहीं बेजुबां, बेबस, ईमान, निगाह, मनसबदार, शाइर, अल गजाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी, आलिमो फाजिल, सिपहसालार, इनकार, खुद–मुख्तार, सल्तनत, जिरहबख्तर, शहंशाह, आलमगीर, शाही मुकाम, दरबारे–आम, खुदगर्ज, बख्तरबंद, तजुर्बा, सिपहसालार, संजीदा, बुर्ज, बेनाम, बेमालूम, मुहैया, लश्कर जैसे उर्दू–फारसी के शब्द उनकी कविता में मिलते हैं। साथ ही उनकी कविता में गणित, विज्ञान, दर्शन, भूगोल, इतिहास आदि अनुशासनों के शब्द भी प्रसंगों के अनुसार आये हैं।

मुक्तिबोध ने अपनी कविता में अभिनव बिम्बों का प्रयोग किया है। मुक्तिबोध ने बिम्बों का प्रयोग वातावरण निर्माण और सम्प्रेषणीयता के लिए किया है। उनकी कविता में ऐन्द्रिय बिम्ब, दृश्य बिम्ब, नाद बिम्ब, और अप्रस्तुत बिम्ब आदि मिलते हैं।

'ब्रह्मराक्षस' कविता में दृश्य बिम्ब का एक उदाहरण जिसके माध्यम से मुक्तिबोध ने रहस्यमय वातावरण की सृष्टि की है–

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ

परित्यक्त सूनी बावड़ी

के भीतरी

ठण्डे अंधेरे में

बसी गहराइयां जल की...

सीढ़ियां डूबी अनेकों

उस पुराने घिरे पानी में...
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।

इसी तरह मुक्तिबोध की कविताओं में प्रतीकों का बहुतायत प्रयोग है। वे प्रतीकों का चयन आधुनिक जीवन–शैली, यान्त्रिक सभ्यता, संस्कृति के क्षेत्र, मिथक और सम्पूर्ण भाव तथा वस्तु जगत से करते हैं। मिथकों से ब्रह्मराक्षस, वटवृक्ष आदि, इतिहास से तिलक, गांधी आदि।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध अपनी कविताओं में निहित वैचारिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना, शोषणमुक्त वर्गविहीन समाज की स्थापना का स्वप्न तथा अपनी अभिनव भाषा, बिम्ब और प्रतीक योजना को लेकर हिन्दी के विशिष्ट कवि हैं।

3.5 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : सामान्य परिचय

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आधुनिक हिन्दी के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म बस्ती (उत्तर प्रदेश) में 15 सितम्बर, 1927 को हुआ। इनके पिता का नाम श्री विश्वेश्वरदयाल था। सर्वेश्वरदयाल के पिता मध्यवर्गीय परिवार से थे, किन्तु वे मध्यवर्गीय संस्कारों से सर्वथा मुक्त थे। जिसका प्रभाव बालक सर्वेश्वर पर भी पड़ा। परिवार के शैक्षिक वातावरण में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद सर्वेश्वरदयाल ने इलाहाबाद से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उनके भीतर ज्ञान के प्रति लगाव बढ़ता ही गया। इसी के बाद उन्होंने 1949 में एम.ए. किया।

औपचारिक शिक्षा के बाद सर्वेश्वरदयाल रोजी–रोजगार की दिशा में आगे बढ़े। थोड़ी–बहुत खोजबीन के बाद उन्होंने इलाहाबाद में ए.जी. कार्यालय में प्रमुख डिस्पैचर का कार्य करना प्रारम्भ किया। ए.जी. कार्यालय में वे 1955 तक उसी पद पर कार्य करते रहे।

डिस्पैचर के कार्य से सर्वेश्वर के लिए आर्थिक सहयोग तो हो रहा था, किन्तु उस कार्य की नीरस प्रकृति सर्वेश्वर के रचनात्मक मानस के अनुकूल नहीं थी। कार्य की एकरसता को तोड़ने और सृजनात्मकता के दवाबों के बीच सर्वेश्वरदयाल अपने लिए रोजगार की दूसरी संभावनाओं को टटोलते रहे। फलस्वरूप उनकी नियुक्ति दिल्ली में ऑल इंडिया रेडियो के हिन्दी समाचार विभाग में सहायक संपादक के पद पर हुई। वे 1960 तक उक्त पद पर कार्य करते रहे। शहर और कार्य की बदली हुई प्रकृति उनके रचनात्मक लगावों के लिए कारगर सिद्ध हुई। रेडियो की उस नौकरी में एक बार उनका स्थानान्तरण लखनऊ में हुआ, जहां वे 1964 तक रहे। आकाशवाणी भोपाल में भी वे कुछ समय तक रहे थे।

सर्वेश्वरदयाल प्रखर रचनात्मक मानस के व्यक्ति थे। कवि मन के साथ ही उनके भीतर सामाजिक सरोकारों के प्रति भी गहरी आकुलता थी। उसी समय अपने जमाने की सर्वाधिक चर्चित साहित्यिक पत्रिका 'दिनमान' का प्रकाशन शुरू हुआ। सर्वेश्वरदयाल इसे

अपने लिए एक रचनात्मक अवसर मानते हुए रेडियो की नौकरी से त्याग–पत्र देकर 1964 में ही 'दिनमान' से जुड़ गये। यहीं से सर्वेश्वरदयाल का पत्रकारिता का जीवन शुरू हुआ। पत्रकारिता में कार्य करते हुए सर्वेश्वरदयाल ने यह महसूस किया कि हिन्दी में बाल–साहित्य की स्थिति बहुत अधिक खराब है। अपनी इस विशिष्ट सोच के चलते सर्वेश्वरदयाल एक बाल पत्रिका निकालने की कोशिश करते रहे। उनका स्वप्न 1982 में साकार हुआ जब वे 'पराग' पत्रिका के संपादक बनाये गये। 'पराग' पत्रिका के संपादन काल में सर्वेश्वरदयाल ने बाल–साहित्य और बाल–पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

साहित्य और पत्रकारिता के साथ अपने सामाजिक सरोकारों एवं चेतना को आकार देते हुए सर्वेश्वरदयाल का निधन दिल्ली में 23 सितंबर, 1983 को हो गया।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचनाएं

काव्य–संग्रह

- काठ की घंटियां – 1959
- बांस का पुल – 1963
- एक सूनी नाव – 1966
- अज्ञेय द्वारा 1959 में संपादित तीसरा सप्तक में संकलित कविताएं– सं. अज्ञेय, 1959
- गर्म हवाएं – 1966
- कुआनो नदी – 1973
- जंगल का दर्द – 1976
- खूंटियों पर टंगे लोग – 1982

कथा–साहित्य

- पागल कुत्तों का मसीहा (लघु उपन्यास) – 1977
- सोया हुआ जल (लघु उपन्यास) – 1977
- उड़े हुए रंग – (उपन्यास) यह उपन्यास सूने चौखटे नाम से 1974 में प्रकाशित हुआ था।
- कच्ची सड़क – 1978
- अंधेरे पर अंधेरा – 1980

नाटक

- बकरी – 1974
- लड़ाई – 1979
- अब गरीबी हटाओ – 1981
- रूपमती बाज बहादुर – 1976

यात्रा संस्मरण

- कुछ रंग कुछ गंध – 1979

बाल कविता

- बतूता का जूता – 1971
- महंगू की टाई – 1974

बाल नाटक

- भों–भों खों–खों – 1975
- लाख की नाक – 1979

संपादन

- शमशेर (मलयज के साथ – 1971)
- रूपांबरा – 1980 (संपादक – अज्ञेय के साथ सहायक संपादक)
- अंधेरों का हिसाब – 1981
- रक्तबीज – 1977

3.5.1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : पाठ्यांश – सुहागिन का गीत, सौन्दर्य बोध

1. सुहागिन का गीत

यह डूबी–डूबी सांझ
उदासी का आलम :
मैं बहुत अनमनी
चले नहीं जाना बालम।
ड्योढी पर पहले दीप जलाने दो मुझको
तुलसी जी की आरती सजाने दो मुझको,
मन्दिर में घण्टे, शंख और घड़ियाल बजे
पूजा की सांझ संझौती गाने दो मुझको,
उगने तो दो पहले उत्तर में ध्रुव तारा,
पथ के पीपल पर कर आने दो उजियारा,
पगडंडी पर जल, फूल–दीप धर आने दो,
चरणामृत जाकर ठाकुर जी का लाने दो,
यह डूबी–डूबी सांझ उदासी का आलम,
मैं बहुत अनमनी चले नहीं जाना बालम।

शब्दार्थ : सांझ– शाम, आलस– दशा, अनमनी– मन का न लगना, ड्योढ़ी– दहलीज, चौरी, घड़ियाल– बड़ा घंटा, साझ– शाम, संझौती– शाम के समय का गीत, ध्रुव तारा– उत्तर दिशा में शाम के समय उगने वाला तारा, चरणामृत– भगवान के चरणों में चढ़ाया जाने वाला द्रव्य, ठाकुरजी– ईश्वर, बालम– पति, प्रिय, स्वामी।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता 'सुहागिन का गीत' से उद्धृत है। सुहागिन वह स्त्री होती है जिसका पति जीवित होता है। इस कविता में पति वियोग की आशंका से ग्रस्त एक सुहागिन स्त्री की मनोदशा का आत्मकथात्मक शैली में वर्णन किया गया है। सुहागिन स्त्री अनेकानेक बहानों के द्वारा अपने पति को परदेश जाने से रोकना चाहती है। परिवार और प्रकृति की गतिविधियों की ओर पति का ध्यान आकृष्ट कर सुहागिन स्त्री उसे सांसारिकता से निकालकर अपने निश्छल प्रेम के पाश में बांधना चाहती है। यह कविता लोक गीत की शैली में लिखी गई है। लोकगीतों में त्रासदी और उत्सव का सुंदर समन्वय होता है। यह विशेषता इस गीत में भी उपस्थित है। उत्तर भारत में पति के परदेश जाने की घटनाएं आम थीं। इसलिए प्रिय के प्रवास और उसके विछोह में लिखे गए गीतों की दीर्घकालीन परंपरा हिंदी पट्टी में मिलती है। यह गीत उसी परंपरा को समृद्ध करता है। इस कविता का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें नायिका केवल अपनी वेदना का वर्णन कर ही पति को रोकने का प्रयास नहीं कर रही है बल्कि उसे गतिशील पारिवारिक जीवन और सम्मोहक प्राकृतिक परिवेश में भी बांधना चाहती है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में सुहागिन स्त्री शाम के समय की उदासी में अपने पति का साथ चाहती है और इस बात से आशंकित है कि कहीं इस उदासी की मनोदशा में ही मेरा पति मुझे छोड़कर परदेश न चला जाय। भारतीय नारी शाम के समय तमाम कार्य करती है। यह कार्य शाम की उदासी से बचने और रात के स्वागत के लिए होता है। इन पंक्तियों में नायिका पति से निवेदन करती है कि शाम को किए जाने वाले तमाम कामों को कर लेने दो फिर तुम्हें जाना हो तो जाना। इन कामों के सम्पन्न होने के पहले ही मुझे छोड़कर मत चले जाना।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में सुहागिन स्त्री अपने पति से मनुहार कर रही है कि आज की शाम बहुत ही खोयी–खोयी सी है। मेरा मन उदास है। मैं अनमनी हूं। मेरा मन कहीं लग नहीं रहा है। ऐसे समय में मुझे तुम्हारी जरूरत है। मैं तुम से आग्रह करती हूं कि इस उदास शाम में तुम मुझे छोड़ कर कहीं चले मत जाना। असल सुहागिन स्त्री वह है जिसका पति उसकी हर मुश्किल में उसके साथ खड़ा रहता है। सुहागिन स्त्री की चाह होती है कि उसका सुहाग अधिक–से–अधिक समय उसके साथ गुजारे, पर इस स्त्री की कठिनाई है कि उसको डर है कि उसका पति उसे छोड़कर कहीं चला न जाए। इसलिए वह उससे मनुहार कर रही है कि जाना हो तो फिर कभी चले जाना पर इस उदास शाम में मुझे छोड़कर कहीं मत जाना।

नायिका कहती है कि शाम की इस बेला में मुझे बहुत सारे काम हैं। अभी मुझे अपनी देहरी पर शाम का दीपक जलाना है। आंगन में लगे तुलसी जी के पौधे के लिए आरती सजाना है। मंदिर के घण्टे, शंख और घड़ियाल बज जाने के बाद शाम की पूजा करते हुए संझौती गाना है। अपने कामों के बाद शाम के समय प्रकृति में होने वाले बदलावों की ओर

ध्यान दिलाते हुए नायिका कहती है कि अभी तो उत्तर दिशा में ध्रुवतारा को उगना है और चांद की रोशनी में गांव की गलियों में खड़े पीपल के पेड़ पर उसका प्रकाश आना है। गांव के रास्तों पर जल की बौछार होने दो और पूजा के बाद मंदिर से फूल–दीप और घर के देवता ठाकुर जी के लिए फूल–दीप लाने दो। तब तक के लिए तो मेरे बालम रुक जाओ। शाम के समय घर के इन कामों की याद दिलाते हुए एक ओर जहां नायिका इस बहाने पति को कुछ देर अपने साथ और रोकना चाहती है वहीं दूसरी ओर उसे घर के मोह में बांधना भी चाहती है। इन पंक्तियों में शाम के समय होने वाले कामों का जो जिक्र सुहागिन स्त्री ने किया है वह किसी भी घर के लिए आम घटना है।

यह काली–काली रात
बेबसी का आलम,
मैं डरी–डरी–सी
चले नहीं जाना बालम।
बेले की पहले ये कलियां खिल जाने दो,
कल का उत्तर पहले इनसे मिल जाने दो,
तुम क्या जानो यह किन प्रश्नों की गांठ पड़ी?
रजनीगन्धा से ज्वार सुरभि की आने दो,
इस नीम–ओट से ऊपर उठने दो चन्दा
घर के आंगन में तनिक रोशनी आने दो,
कर लेने दो तुम मुझको बन्द कपाट जरा
कमरे के दीपक को पहले सो जाने दो,
यह काली–काली रात बेबसी का आलम,
मैं डरी–डरी–सी चले नहीं जाना बालम।

शब्दार्थ : सुरभि– खुशबू, तनिक– थोड़ा सा, बेबसी– मजबूरी, कपाट– दरवाजा।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : इन पंक्तियों में नायिका काली अंधेरी रात की बेबसी और उससे उत्पन्न भय का वर्णन करते हुए पति से अपने साथ रहने का आग्रह करती है। इस अंश में रात्रिकाल में प्रकृति के मादक वातावरण के वर्णन के माध्यम से नायिका अपने मन में उठ रहे काम भाव का वर्णन कर रही है।

व्याख्या : शाम के बाद रात की स्थितियों का वर्णन करते हुए नायिका कहती है कि यह रात बहुत अंधियारी है और इसमें मैं खुद को बेबस महसूस कर रही हूं। इस अंधेरी रात में तुम्हारे अभाव की आशंका से ही डरी–डरी सी हूं। ऐसी स्थिति में मैं तुझसे निवेदन करती हूं कि इस अंधेरी रात में मुझे छोड़कर चले मत जाना। बेला नामक फूल की कलियों की ओर संकेत करती है कि इन कलियों को खिल जाने दो, क्या पता प्रकृति ने इसमें किस

रहस्य को छुपा रखा है। तुम्हें तो यह भी पता नहीं कि प्रकृति के किन प्रश्नों की गांठ के रूप में बेला की यह कली बनी है। सांकेतिक रूप से नायिका कहना चाह रही है कि मेरे मन के भीतर भी न जाने कितने सवालों की गांठ बनी हुई है लेकिन तुम्हारे पास उसको सुनने का समय ही नहीं है। आज की रात अगर रुक जाओ तो क्या पता बेले की यह कली भी खिल जाए और मेरा मन भी खुल जाए। नायिका कहती है कि अभी थोड़ी रात तो होने दो और रजनीगंधा नामक फूल से खुशबू का ज्वार तो उठने दो। नीम नामक वृक्ष की ओट से आसमान में चांद को खिलने तो दो। रात की इस बेला में मुझे अपने कमरे का दरवाजा बंद तो कर लेने दो और कमरे के जलते दीपक को पहले बुझ तो जाने दो। कुछ वक्त तुम्हारे साथ बिता तो लेने दो। यहां नायिका नायक से बेबस काली रात में पति के साथ की आकांक्षा करती है और उसके साथ यह रात बिताना चाहती है।

यह ठंडी–ठंडी रात
उनींदा–सा आलम,
मैं नींद–भरी–सी
चले नहीं जाना बालम।
चुप रहो जरा सपना पूरा हो जाने दो,
घर की मैना को जरा प्रभाती गाने दो,
खामोश धरा–आकाश, दिशाएं सोयी हैं,
तुम क्या जानो क्या सोच रात भर रोयी हैं?
ये फूल सेज के चरणों पर धर देने दो,
मुझको आंचल में हरसिंगार भर लेने दो,
मिटने दो आखों के आगे का अंधियारा,
पथ पर पूरा–पूरा प्रकाश हो लेने दो!
यह ठंडी–ठंडी रात उनींदा–सा आलम,
मैं नींद भरी–सी चले नहीं जाना बालम!

शब्दार्थ : मैना– एक चिड़िया, प्रभाती– सुबह का गीत, धरा– पृथ्वी, सेज– सुहागन स्त्री का बिस्तर, हरसिंगार– एक प्रकार का फूल, पथ– रास्ता।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : इन पंक्तियों में नायिका रात की परिस्थिति का वर्णन करते हुए अपने पति को रोकना चाहती है। रात की प्रकृति के साथ अपने मानोभावों का मेल कर वह अपनी कामनाओं को पति के समक्ष प्रस्तुत करती है। इसमें नारी सुलभ गुणों का सुंदर चित्रण किया गया है।

व्याख्या : रात के अंतिम पहर की स्थिति का वर्णन करते हुए नायिका कहती है कि यह ठंडी–ठंडी रात है और इसमें तुम्हारा गर्म साथ है। इस अंतिम पहर में सारा आलम उनींदा

सा है और मै तुम्हारी आगोश में धीरे–धीरे नींद में डूबी जा रही हूं। ऐसे समय में बुद्ध की तरह तुम मुझे सोया हुआ छोड कर मत चले जाना। इस समय तुम मुझसे बातें मत करो, जरा चुप रहो। इस मधुर नींद में जो मीठा सा सपना मैं देख रही हूं उसे पूरा हो जाने दो। घर की मैना को सुबह का स्वागत करते हुए प्रभाती गा लेने दो। अर्थात सुबह हो जाने दो। अभी तुम्हीं देखो समस्त धरती–आकाश चुप हैं और सारी दिशाएं सोयी हुई हैं। क्या तुम जानते हो कि इनकी चुप्पी रात भर रोने के बाद की चुप्पी है। तुम तो कठोर हो फिर कैसे प्रकृति की इस पीड़ा को जान सकोगे। सांकेतिक रूप से सुहागिन स्त्री यह भी कहना चाहती है कि तुम मेरी भी भावनाओं को नहीं जान पाते। अंत में नायिका कहती है कि आज रात सेज पर जो फूल बिछे हुए थे उन्हें सेज के नीचे गिर जाने दो यानी सुबह हो जाने दो। मुझे भी सुबह की पूजा के लिए अपने आंचल में हरसिंगार का फूल चुन लेने दो। आखों के सामने से रात का अंधेरा छंट जाने दो और रास्तों पर अच्छी तरह से सूरज का प्रकाश फैल जाने दो।

2. सौंदर्य–बोध

अपने इस गटापारची बबुए के
पैरों में शहतीरें बांधकर
चौराहे पर खड़ा कर दो
फिर, चुपचाप ढोल बजाते जाओ
शायद पेट पल जाय
दुनिया विवशता नहीं
कुतूहल खरीदती है।

शब्दार्थ : गटापारची– कागज का एक मोटा प्रकार, शहतीरें– बड़ा और लम्बा लट्ठा, विवशता– मजबूरी, कुतूहल– उत्सुकता।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां 'नयी कविता' के दौर के प्रसिद्ध कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता 'सौंदर्य–बोध' की पंक्तियां हैं। यह कविता अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' में संकलित थी। पूंजीवादी प्रभाव के कारण मानवीय मूल्यों में हो रहे विध्वंस की बजह से आधुनिक समाज में सौंदर्य के मानदंड बदल रहे हैं। यह कविता इस स्थिति पर करारा व्यंग्य करती है। कविता का शीर्षक 'सौंदर्य–बोध' एक सामाजिक विडंबना की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर रहा है। दरअसल अब हम केवल आकर्षण और कुतूहल से भरी वस्तुओं की ओर ही आकर्षित हो रहे हैं और अपने सामाजिक दायित्व से किनारा कर चुके हैं।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि समाज में बढ़ रही अमानवीयता पर व्यंग्य कर रहा है। कवि को लगता है लोगों का सौंदर्य–बोध इतना अधिक विकृत हो गया है कि वे कुतूहल के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं।

व्याख्या : कवि का कहना है कि अब दुनिया में किसी की पीड़ा या मजबूरी पर ठहरकर विचार करने और उसका सहयोग करने की भावना लगभग समाप्त हो गयी है। लोगों को अब केवल मनोरंजन और आनंद चाहिए। एक समय था जब किसी की सहायता करने में

लोग आनंद का अनुभव करते थे। किसी की विवशता पर दुखी होते थे। परंतु वर्तमान पूंजीवादी समाज में लोगों को केवल कुतूहल चाहिए। कवि वर्तमान स्थिति पर तंज कसते हुए कहता है कि यदि आप गरीब हैं और अपना पेट पालना चाहते हैं तो किसी से मदद की उम्मीद मत रखिए, बल्कि अपने जीते–जागते कोमल बच्चे को रबर का बच्चा समझकर उसके पैरों में बड़े और लम्बे लट्ठ बांध कर किसी चौराहे पर खड़ा कर दीजिए। उसके बाद बगल में बैठकर स्वयं भी ढोलक बजाइए। ऐसा करने से लोग उत्सुकतावश आपका तमाशा देखने के लिए आपके पास आएंगे और उसके बदले में आप पर पैसा फेंक कर चले जाएंगे, क्योंकि कवि के शब्दों में दुनिया कुतूहल खरीदती है विवशता नहीं। यह सब ऐसा इसलिए हो रहा है कि क्योंकि आज की दुनिया का सौंदर्य–बोध बदल गया है या पतित हो गया है।

भूखी बिल्ली की तरह
अपनी गरदन में संकरी हांडी फंसाकर
हाथ–पैर पटको,
दीवारों से टकराओ,
महज छटपटाते जाओ,
शायद दया मिल जाय–
दुनिया आंसू पसन्द करती है,
मगर शोख चेहरों के।

शब्दार्थ : संकरी हांडी– पतले गले वाला घड़ा, शोख– चटकीला, आकर्षक, दुनिया– संसार।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि समाज के सौंदर्य–बोध की विकृति पर प्रहार करते हुए कहता है कि अब हम दर्द में भी सुंदरता की खोज कर रहे हैं। किसी सुंदर चेहरे पर आने वाले आंसू तो हमें आसानी से दिखाई दे जाते हैं लेकिन किसी कुरूप या गरीब व्यक्ति के आंसुओं को हम देख नहीं पाते।

व्याख्या : कवि का कहना है कि संसार का सौंदर्य–बोध इतना विकृत हो गया है कि मनुष्य के दर्द में भी वह सौंदर्य की तलाश करता है। शारीरिक स्तर पर कुरूप व्यक्ति की पीड़ा को लोग नजरअंदाज कर देते हैं। राजा के पुत्र के छोटे से घाव को राज्य के संकट के रूप में देखा जाता है जबकि गरीब आदमी का बेटा भूख से तड़प कर मर भी जाए तो लोगों का ध्यान नहीं जाता। कवि इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि आपको लोगों की दया की दरकार है तो कुछ ऐसा विचित्र करो कि लोगों का ध्यान आपकी ओर आकर्षित हो क्योंकि अब लोगों का ध्यान केवल खूबसूरत चेहरे पर टपकने वाले आंसुओं पर ही जाता है। यदि आप आम आदमी हैं और आप किसी आपदा से ग्रस्त हैं तो लोगों की दया और कृपा प्राप्त करने के लिए भूखी बिल्ली की तरह अपनी गरदन में एक संकरा घड़ा डालकर हाथ–पैर पटकिए, खुद को दीवारों से टकराइए और लोगों के सामने खुद को छटपटाते हुए

प्रस्तुत करिए। क्योंकि इसके बिना लोगों का ध्यान आपकी ओर जाएगा ही नहीं। वर्तमान समाज में निरंतर छीज रही मानवता पर कवि का यह तीखा व्यंग्य है।

अपनी हर मृत्यु को
हरी–भरी क्यारियों में
मरी हुई तितलियों–सा
पंख रंगकर छोड़ दो
शायद संवेदना मिल जाय
दुनिया हाथों–हाथ उठा सकती है
मगर इस आश्वासन पर
कि रुमाल के हल्के स्पर्श के बाद
हथेली पर एक भी धब्बा नहीं रह जायगा।

शब्दार्थ : संवेदना– समान भाव, आश्वासन– भरोसा, स्पर्श– छुअन।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मानवीय संवेदना के छीज जाने और उसके सौंदर्य–बोध के भोथरा हो जाने की वर्तमान स्थिति पर व्यंग्य कर रहे हैं।

व्याख्या : कवि को लगता है कि वर्तमान समय में आदमी एक बार नहीं मरता बल्कि उसे बार–बार मरना पड़ता है। मनुष्य की दैहिक मृत्यु भले ही एक बार होती हो लेकिन विचार और भावना के स्तर पर उसे बार–बार मरना पड़ता है। मुश्किल यह है कि किसी की मृत्यु पर भी संवेदना अभिव्यक्त करने का बोध लोगों के पास नहीं है। यदि कोई चाहता है कि उसकी मृत्यु पर लोग संवेदना व्यक्त करें तो उसे अपनी मृत्यु को भी उसी तरह रंगीन और आकर्षक बनाना होगा जैसे किसी हरी–भरी क्यारी पर मरी हुई तितलियां मरने के बाद भी अपने पंखों का रंग क्यारियों पर छोड़कर जाती हैं जिससे लोग उसकी तरफ आकर्षित हो जाते हैं। सामान्यतया मृत्यु पाषाण हृदय को भी सहज ही संवेदित कर देती है पर आज की सच्चाई यह है कि किसी की मृत्यु के प्रति ध्यानाकर्षण के लिए भी अतिरिक्त प्रयास करने की जरूरत पड़ रही है। कवि वर्तमान युग की संवेदनहीनता के स्वरूप को और अधिक विस्तार देते हुए कहता है कि आप यदि अपनी मृत्यु को हसीन बना दें तो लोग आपके प्रति आकर्षित हो सकते हैं लेकिन आपको इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि जब वे आपकी मृत्यु पर संवेदना व्यक्त करने आएं तो उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। इसी तथ्य को कवि इस रूप में कहता है कि यदि आपकी मृत्यु हसीन हो तो लोग आपको हाथों–हाथ उठा सकते हैं लेकिन इस आश्वासन के साथ कि यदि रुमाल से भी आपको स्पर्श करे तो स्पर्श करने वाले की हथेली गंदी नहीं होगी। तात्पर्य यह कि लोग यदि किसी प्रकार आपकी मदद को तैयार भी होते हैं तो इस आश्वासन के साथ कि उसके बदले उन्हें किसी प्रकार की मुश्किल का सामना नहीं करना पड़ेगा। कुल मिलाकर आज के समय में लोगों की संवेदना इस प्रकार मृत हो चुकी है कि उसको झंकृत करना बेहद मुश्किल काम

है। सौंदर्य–बोध का सीधा संबंध संवेदना से है। इसलिए कवि कहना चाहता है कि लोगों की संवेदना मृत हो चुकी है।

आज की दुनिया में
विवशता,
भूख,
मृत्यु,
सब सजाने के बाद ही
पहचानी जा सकती है।
बिना आकर्षण के
दुकानें टूट जाती हैं।
शायद कल उनकी समाधियां नहीं बनेंगी
जो मरने के पूर्व
कफन और फूलों का
प्रबंध नहीं कर लेंगे।
ओछी नहीं है दुनिया :
मैं फिर कहता हूं
महज उसका
सौन्दर्य–बोध बढ़ गया है।

शब्दार्थ : ओछी– तुच्छ, छिछोरा, हल्का, सौन्दर्य बोध– सुंदरता को समझने का दृष्टिकोण।

संदर्भ : उपरोक्त

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि ने वर्तमान पूंजीवादी समाज में सौंदर्य के बदलते मानदंडों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है।

व्याख्या : कविता की इन पंक्तियों में निष्कर्षात्मक टिप्पणी करते हुए कवि कहता है कि विवशता, मृत्यु, भूख सबका व्यापार हो रहा है। कोई भी इस समस्या के प्रति सहज संवेदित नहीं है, और न ही इस स्थिति से सचमुच पीड़ित है। सब इसको बाजार में सजा रहे हैं और उसे बेच रहे हैं। जो इसमें असफल हैं वह भूख से विवश होकर मौत को गले लगाने के लिए अभिशप्त हैं। बाजारवाद और विज्ञापन का आतंक इतना अधिक व्याप्त हो गया है कि जिस दुकान या वस्तु में आकर्षण नहीं है, वह मूल्यवान होने के बावजूद मूल्यहीन है। यही स्थिति मानवीय संवेदना और भावना की भी है। हमारी संवेदना इतनी भोथरी हो चुकी है कि जो मरने के पहले अपने लिए कफन और फूल का इंतजाम करके नहीं जाएगा उसकी समाधि नहीं बनेगी। तात्पर्य यह कि जिसकी सहायता से हमें कुछ नहीं मिलेगा उसके लिए हम कुछ भी मदद नहीं करेंगे। निष्काम कर्म और निःस्वार्थ सहयोग अब केवल किताबी बातें रह गयी हैं। कविता के अंत में कवि व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है कि यह सब इसलिए

नहीं है कि दुनिया ओछी है, वह क्षुद्र और स्वार्थी हो गयी है बल्कि उसका सौंदर्य–बोध बढ़ गया है। असल में कवि कहना चाहता है कि आज की दुनिया स्वार्थांधता का शिकार होकर पतित हो गई है, और जिसे वह सौंदर्य–बोध कहती है दरअसल वह कुरुपता–बोध है। पूंजीवादी समाज की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि इसमें सौंदर्य के नाम पर कुरुपता का ही व्यापार होता है। इसमें मानवीय संवेदना का कोई मूल्य नहीं होता और सारा संसार जड़ भौतिक पदार्थों के आसपास घूमता रहता है।

3.5.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्यगत विशेषताएं

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मध्यवर्गीय चेतना और प्रामाणिक अनुभूतियों के कवि हैं। नई कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी कविता के विषय मध्यवर्ग के संघर्षों, स्वार्थों के साथ ही लोक–जीवन के अलक्षित प्रसंगों को बनाया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने बदलते हुए यथार्थ को पहचाना। सर्वेश्वर का अपने परिवेश के साथ सिर्फ रागात्मक ही नहीं बल्कि उनमें अपने परिवेश को लेकर एक बेचैनी और उदासी का भी सम्बन्ध है। सर्वेश्वर अपनी कविता में निजी सुख–दुख के साथ ही समकालीन जगत के बाह्य यथार्थ को भी चित्रित करते हैं। वे जहां निजी सुख–दुख का चित्रण करते हैं वह भी अपनी व्याप्ति में सार्वजनिक पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है। कवि वैयक्तिक चेतना से सामाजिक चेतना तक पहुंचता है। इस बिन्दु पर आकर कवि का कवि धर्म और उद्देश्य व्यापक हो जाता है। यह सम्प्रेषण की एक समर्थ प्रक्रिया है जो कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा करता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्य यात्रा 1943 से लेकर 1983 तक चलती रही है। इस दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मूल्यों में बड़े पैमाने पर बदलाव आये, जिन्हें सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में देखा जा सकता है।

परिवेश की आत्मपरक स्वीकृति : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में परिवेश के प्रति आत्मीयता और निजता का भाव उनके काव्य–लेखन के आरम्भ से ही दिखाई देता है। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में पीड़ा, अकेलापन, अजनबीपन के साथ ही उससे उपजी मजबूरी और भय का चित्रण मिलता है। समय के साथ परिवेश के प्रति निजता–बोध कठोर सामाजिक यथार्थ से टकरा कर टूट गया। जिसके कारण उनमें परिवेश का भय और विवशता का भाव भर जाता है। सर्वेश्वर अपनी गहरी जीवनी शक्ति और चेतना से उस भय से मुक्ति ही नहीं पाते बल्कि उसे अपना प्रेरणास्रोत बना लेते हैं–

पहाड़ों को मेरे ऊपर गिरने दो
नदियों को मुझे बहा लेने दो
सागर को किनारे पर
मुझे बार–बार पटकने दो
मैं अपनी शक्ति की परीक्षा
करना चाहता हूं
क्योंकि यह अन्ततः
तुम्हारे प्यार की शक्ति है।

जीवन के प्रति रोमानी भाव–बोध : सर्वेश्वर की कविता में जीवन के प्रति रोमानी–भाव अपने पूरे वैभव के साथ चित्रित हुआ है। प्रेम, देह, दुनिया के प्रति उनके भीतर एक रोमानी–भाव था जो उनके 'काठ की घंटियां', 'बांस का पुल', 'एक सूनी नाव है' जैसे काव्य–संग्रहों की कविताओं में दिखाई देता है। सर्वेश्वर के रोमांटिक बोध की परिणति उनके पूर्ववर्ती कवियों की कविताओं की तरह अवसाद, निराशा और विषाद में नहीं होती। सर्वेश्वर के लिए प्रेम जीवन की अनमोल वस्तु है। उनका प्रेम जीवन को सार्थक बनाता है, जिससे उनमें जीवन के प्रति रोमानी भाव पैदा होता है। वे कहते हैं कि–

अहं से मेरे बड़ी हो तुम!
प्रिय, इसी से तुम्हारे सम्मुख
मौलश्री की डाल यह मैंने झुका दी है,
और बौने प्यार के कर में
अहं की जयमाल ला दी है
क्योंकि मैं,
उखड़कर जिस जगह से गिर पड़ा
वहीं पर दृढ़ हो गड़ी हो तुम।

लोक जीवन के प्रति रागात्मक सम्बन्ध : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं की मूल शक्ति लोक जीवन के प्रति रागात्मक लगाव है। ग्राम–जीवन के अनेकों प्रसंग, अनुभूतियां उनकी कविताओं में दर्ज हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के लिए लोक–जीवन 'काव्यात्मक टूल्स' नहीं, सम्पूर्ण कथ्य है। वे ग्राम संवेदना और ग्राम्य संस्कृति को पूरी सूक्ष्मता और आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं। अपनी कविताओं में लोक–भाषा और लोक–धुनों के सृजनात्मक प्रयोगों द्वारा सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने नई कविता को नई भंगिमा दी है। 'काठ की घंटियां' में सावन का गीत, झूले का गीत, चरवाहों के गीतों की धुनों पर कई कविताएं हैं। उनकी कविताओं में खेत–खलिहान, गांव–ज्वार, तीज–त्योहार, मेले–परम्पराएं पूरी स्वाभाविकता के साथ व्यक्त हुई हैं–

नीम की निबौली पक्की सावन की ऋतु आयी रे,
सर–सर, सर–सर बहत बयरिया
उड़ि–उड़ि जात चुनरिया रे,
खुलि–खुलि जात किवरिया ओढ़गी
घिरि–घिरि जात बदरिया रे।

ग्रामीण परिवेश के उल्लास को अपने मन के उल्लास में बदल लेते हैं–

दिशा–दिशा कजरी बन झूमूं
पात–पात पुरवा बन घूमूं
हरियाली को इन्द्रधनुष की जयमाला पहनाऊं रे।

राजनैतिक व्यंग्य : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की निगाह अपने समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विडंबनाओं पर थी। वे राजनेताओं के समस्त छल–प्रपंच और जनविरोधी राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझ रहे थे। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, भाई–भतीजावाद, बौद्धिकों का दोमुंहापन, समाज की यथास्थिति आदि पर सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने प्रभावशाली व्यंग्य किया है–

जो पोस्टर हैं
महज पोस्टर हैं
वे आज के युग में
आदमी से अधिक बड़े सत्य हैं
उन्हें सब पहिचानते हैं
वे ही महान हैं।
या
क्या रखा है कुरेदने में
हर एक का चक्रव्यूह कुरेदने में
सत्य के लिए
निरस्त्र टूटा पहिया ले
लड़ने से बेहतर है
जैसी है दुनिया
उसके साथ हो लो
व्यंग्य मत बोलो।
या
एक थे हां–हां
एक थे नहीं–नहीं
जहां–जहां गया मैं
मिले मुझे वहीं–वहीं।

सामाजिक–राजनैतिक सरोकारों के प्रति निष्ठा : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपने समकालीन सत्य और सामाजिक–राजनैतिक सरोकारों के प्रति गहरी निष्ठा रखते हैं। वे यथास्थितिवाद के खिलाफ और सामाजिक प्रगति के पक्षधर कवि हैं। शोषण, भ्रष्टाचार और राजनीतिक षड्यंत्रों के प्रति उनके भीतर प्रबल आक्रोश है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आजादी की पूर्व संध्या पर देश की जनता द्वारा देखे गये स्वप्नों के टूट जाने के दंश से परिचित हैं। आजादी के बाद देश के राजनेता जनता को भरोसा दिलाते हैं कि 'धीरे–धीरे' देश की व्यवस्था ठीक हो जायेगी। सर्वेश्वरदयाल इसे राजनीतिक साजिश मानते हैं। सत्ता के इस कुचक्र को डॉ. राममनोहर लोहिया ने बहुत पहले समझ लिया था। लोहिया जी कहते थे

कि 'जिंदा कौमें पांच साल इन्तजार नहीं करतीं।' लोहिया जी चाहते थे कि पूंजीवाद और राजनीति का गठजोड़ जल्दी टूटे और जन केन्द्रित विकास प्रक्रिया में तेजी आये। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना डॉ. राममनोहर लोहिया से अपनी वैचारिक सहमति व्यक्त करते हुए देश की बिगड़ती हालत और सत्ता की यथास्थितिवादी नीतियों से क्षुब्ध होकर कहते हैं कि–

उस देश का मैं क्या करूं

जो धीरे–धीरे लड़खड़ाता हुआ

मेरे पास बैठ गया।

कवि को इस 'धीरे–धीरे' से नफरत है। वह जानता है कि इस 'धीरे–धीरे' की नीति ने ही सब कुछ को खत्म किया है। धीरे–धीरे ही राजनीति में भाई–भतीजावाद बढ़ा है, भूख और गरीबी बढ़ी है, आम आदमी का सपना मरा है और अन्ततः आदमी भी मरा है। इसलिए कवि अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहता है–

'धीरे–धीरे'–

मुझे सख्त नफरत है

इस शब्द से।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी कविता में सामाजिक सरोकारों को लेकर भी सचेत हैं। सामाजिक विषमता और विडम्बना, शोषित वर्ग के प्रति संवेदना, मध्यवर्ग के छोटे–छोटे सुख–दुख, मेहनतकश लोगों के संघर्ष, उनका पारिवारिक परिवेश, उनकी परम्पराएं, आम आदमी की आकांक्षाएं आदि को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं। इसे वे कवि का सामाजिक दायित्व मानते हैं। इसीलिए वे जन सामान्य की जिन्दगी में बदलाव लाने की बात करने वाले विचारों की आलोचना करते हैं, क्योंकि उन विचारों ने मनुष्य को भ्रम में रखा, उसके साथ छल किया। सर्वेश्वर साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि–

साम्यवाद या पूंजीवाद

मैं दोनों पर थूकता हूं

और पूछता हूं

जिसके पैर में तुम जूते नहीं दे सकते

उसके हाथ में तुम्हें

बंदूक देने का क्या अधिकार है?

बाल कविताओं का अनुपम संसार : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य–संसार में दूसरी अन्य विशेषताओं के साथ ही एक अद्वितीय उपलब्धि है–उनकी बाल कविताएं। सर्वेश्वर आधुनिक हिन्दी के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ बाल कविताओं की रचना की है। 'दिनमान' में कार्य करने के दौरान ही सर्वेश्वरदयाल ने हिन्दी में बाल–साहित्य की खराब स्थिति को देखते हुए इस दिशा में कार्य करने का संकल्प किया था। उनके प्रयासों से ही 1982 में उनके ही संपादन में बच्चों की पत्रिका 'पराग' की शुरुआत हुई। सर्वेश्वरदयाल की बाल कविताओं में भाषा की चंचलता, अल्हड़ता और मस्ती भरी हुई है–

इब्नबतूता पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में
थोड़ी हवा नाक में घुस गई
घुस गई थोड़ी कान में

या

सूंड उठाकर हाथी बैठा
पक्का गाना गाने,
मच्छर एक घुस गया कान में,
लगा कान खुजलाने।
फट–फट फट–फट तबले जैसा
हाथी कान बजाता,
बड़े मौज से भीतर बैठा
मच्छर गाना गाता!

सर्वेश्वर बच्चों की कविताओं में भी इस बात का ध्यान रखते थे कि उन्हें वैचारिक रूप से भी प्रखर और सचेत बनाया जाय। वे अपनी एक कविता में नेता की तुलना गधे से करते हैं, जिसमें नेताओं के प्रति उनका व्यंग्य देखने लायक है–

नेता के दो टोपी
औ' गदहे के दो कान,
टोपी अदल–बदलकर पहनें
गदहा था हैरान।
एक रोज गदहे ने उनको
तंग गली में छेंका,
कई दुलत्ती झाड़ीं उन पर
और जोर से रेंका।
नेता उड़ गए, टोपी उड़ गई
उड़ गए उनके कान,
बीच सभा में खड़ा हो गया
गदहा सीना तान!

काव्य भाषा : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी काव्यभाषा को लेकर काफी सजग हैं। उनकी कविताएं पाठकों से संवाद सी करती हैं। जैसे कोई आमने–सामने बैठकर बात कर रहा हो। उनका अनुभव–क्षेत्र व्यापक और विभिन्नता वाला है। उनकी भाषा सहज और सम्प्रेषणीय है। वे अपने समकालीन सत्यों की खोज करने और उसे जनता तक पहुंचाने का माध्यम

भाषा को बनाते हैं। वे भाषा को मनुष्य का सबसे बड़ा आविष्कार मानते हैं। सर्वेश्वरदयाल भाषा को मनुष्य का अस्तित्व और व्यक्तित्व मानते हैं। मनुष्य भाषा में ही अपने होने को प्रकट करता है, अपने प्रेम या विरोध को दर्ज कराता है। इसीलिए सत्ता–संरचना हमेशा से जनता से उसकी भाषा को छीनने–मिटाने की कोशिश करती है। सर्वेश्वर अपनी एक कविता छीनने आए हैं वे में कहते है कि–

और आज छीनने आए हैं वे

हमसे हमारी भाषा

यानी हमसे हमारा रूप

जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है

और जो इस जंगल में

इतना विकृत हो चुका है

कि जल्दी पहचान में नहीं आता।

सर्वेश्वर एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने नई कविता का मुहावरा बदल दिया। भाषा का इतना रचनात्मक प्रयोग सर्वेश्वर से पहले किसी कवि ने नहीं किया था। प्रयोगवाद और नई कविता की सांस्कृतिक शब्दावली के वर्चस्व के बीच सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने लोकजीवन की भाषा और शब्दों की प्रतिष्ठा दिलाई। वे कहते हैं कि–

बोलना चाहता है, अपनी ही पगध्वनि से बोल

दर्द की गांठ तू अपने ही छालों पर बोल।

सर्वेश्वर का भाषा–संसार बहुत व्यापक है। लोकभाषा के बहुत सारे शब्द उनकी कविता में आये हैं, जैसे– ड्योढ़ी, चौपाये, कांसे के कंगन, दुअन्नी, झौआ, गिरिपन, कनकौआ आदि।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी काव्यभाषा को और अधिक संवादी बनाने के लिए सार्थक और रचनात्मक प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, जो उनकी कविता के कथ्य में निहित बेचैनी को पाठकों तक बिना किसी बाधा के सम्प्रेषित कर देते हैं–

एक ओर भूखी गौरैय्या

एक ओर नीला अजगर है।

यहां भूखी गौरैय्या किसान–मजदूर और नीला अजगर सामंतवाद का प्रतीक है। इसी तरह वे अपनी प्रसिद्ध कविता 'भेड़िया' में कहते हैं कि–

भेड़िया गुर्राता है

तुम मशाल जलाओ!

उसमें और तुममें

यही बुनियादी फर्क है।

भेड़िया मशाल नहीं जला सकता।

इस कविता में भेड़िया पूंजीवादी, साम्राज्यवादी और भ्रष्ट राजनीतिक ताकतों का और मशाल विचारों का प्रतीक है।

इस तरह देखा जा सकता है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नई कविता के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से हिन्दी कविता का विस्तार किया। नये विषय, भाषा के नये मुहावरे, कहने की नई शैली के साथ ही जनता और कविता के बीच के सम्बन्ध को और अधिक मजबूत किया।

3.6 सारांश

आधुनिक काल के 'आधुनिक' शब्द को लेकर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। साहित्य के संदर्भ में तथा इतिहास के संदर्भ में इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है। एक तो आदिकाल तथा मध्यकाल से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टि की सूचना देने वाली सभी गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में और दूसरे लौकिक, सामाजिक एवं सांसारिक दृष्टिकोण के बदलते, संवरते परिप्रेक्ष्य में। रीतिकाल में शृंगारिकता, ऊहात्मकता, रूढ़िवादिता तथा शास्त्रीयता से समृद्ध एक विशेष प्रकार के साहित्य ने एकरसता और अरुचि पैदा कर दी थी। तत्पश्चात नवीन ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई और आधुनिक गत्यात्मकता का संचार होने लगा। यह आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण कला और साहित्य में भी इसीलिए अभिव्यक्त हुआ क्योंकि इस युग में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में इसका प्रादुर्भाव हो रहा था।

नागार्जुन हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में से एक हैं। इनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। प्रारम्भ में मातृभाषा मैथिली में 'यात्री' नाम से साहित्य लेखन करते रहे। बाद में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के उपरान्त 'नागार्जुन' नाम से साहित्य साधना करने लगे। नागार्जुन के समग्र व्यक्तित्व पर निराला और राहुल सांकृत्यायन दोनों का स्पष्ट प्रभाव है। साम्यवादी विचारधारा के प्रति आस्था के फलस्वरूप उन्होंने कविता में कल्पना–तत्त्व को त्यागकर पीड़ित और वंचित तबके की मूक आवाज को अपने काव्य में वाणी प्रदान की है। नागार्जुन का काव्य शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषण के विरुद्ध आक्रोश के साथ–साथ किसान जीवन की त्रासदी और अभाव में जीने वाले लाखों–करोड़ों लोगों की आशा–आकांक्षा एवं उनकी जिजीविषा का साहित्यिक अभियान है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण वे जनता के कवि कहे जाते हैं।

नागार्जुन के काव्य में समसामयिकता का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। नागार्जुन की मान्यता है कि जब चारों ओर शोषण और वर्चस्व की प्रधानता हो, राजनीतिक अकर्मण्यता हो, महंगाई, बेरोजगारी और भुखमरी से जनता त्रस्त होने के कारण अपना उचित–अनुचित विवेक भुला बैठी हो तब ऐसे कठिन समय में विरोध ही एकमात्र हथियार है।

नागार्जुन कभी प्रखर राजनीतिक चेतना से युक्त लगते हैं तो कभी लोक–जीवन सा निर्दोष, तो कभी ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देते नास्तिक लगते हैं तो कभी मनुष्यता की संभावनाओं पर भरोसा रखने वाले आस्तिक लगते हैं। तो कभी ईश्वर की सत्ता के प्रति आस्थावान होकर प्रकृति और जीवन के सौन्दर्य में रमते दिखाई देते हैं। इन सबके साथ वे कभी भी जीवन के यथार्थ की उपेक्षा नहीं करते हैं। जो जैसा है उसे उसी रूप में और उसी भाषा और शैली में अपनी कविता में चित्रित करते हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के बाद के काव्य आंदोलन को 'प्रयोगवाद' कहा जाता है। प्रयोगवाद दो शब्दों 'प्रयोग' और 'वाद' से बना है। प्रयोग शब्द का अभिप्राय 'कर के देखना' है और 'वाद' शब्द का अभिप्राय सिद्धान्त है। अर्थात प्रयोगवाद का अर्थ हुआ कि जो पहले से है, उसका परीक्षण करते हुए पुनः उसका ज्ञान प्राप्त करने वाला सिद्धान्त या मत। प्रयोग एक प्रक्रिया है, परिणाम नहीं। प्रयोग के द्वारा ही हम पुरानी मान्यताओं का परीक्षण करते हैं और अपने युग के अनुसार उसकी प्रासंगिकता का निर्धारण करते हैं। समय के साथ पुरानी मान्यताओं का परीक्षण आवश्यक होता है। प्रयोग की यह प्रक्रिया जीवन, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में आवश्यक होती है।

अज्ञेय जीवन और रचना दोनों स्तरों पर प्रयोग के पक्षधर थे। स्वयं अज्ञेय ने अपनी कविता में नये उपमान, नये प्रतीक, नये बिम्बों का विलक्षण प्रयोग किया है। साथ ही वे अपने समय को उसकी सम्पूर्णता में समझने और अपने प्रयोगों द्वारा उसे अपनी कविता में प्रस्तुत करने की कोशिश अज्ञेय के साथ–साथ लगभग सभी प्रयोगवादी कवियों की विशेषता रही है। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में अपने साथ के कवियों को अन्वेषी माना, एक राह के अन्वेषी। इसीलिए अज्ञेय और उनके साथ के कवियों ने प्रेम, प्रकृति और पीड़ा को एकदम नये रूप में प्रस्तुत कर हिन्दी कविता के दायरे का विस्तार किया। अज्ञेय ने नये सत्य की खोज, साधारणीकरण एक नयी समस्या, रस और बौद्धिकता तथा परम्परा का प्रश्न जैसे सैद्धान्तिक प्रश्नों के साथ प्रयोगवाद के वैचारिक आधारों की स्थापना की है।

प्रयोगवाद और अज्ञेय का सम्बन्ध सर्जक और सर्जना का सम्बन्ध है। प्रयोगवाद की वैचारिक भूमि और उसकी चेतना के निर्माण में अज्ञेय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। एक तरह से अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी कविता के विशिष्ट कवि हैं। वे अपनी कविताओं के अभिनव कथ्य, नवीन शिल्प के लिए अद्वितीय हैं। मुक्तिबोध युग की बेचैनी के कवि हैं। वे अपनी कविताओं में सामाजिक असमानता, राजनीतिक विद्रूपता, पूंजी का दुश्चक्र, राजनीति और पूंजी का गठजोड़, मध्यवर्गीय मनुष्य का स्वार्थ और कायरता आदि पर अपनी बेबाक राय रखते हैं। वस्तुतः मुक्तिबोध एक खुशहाल और शोषणविहीन समाज चाहते थे, जिसमें सबको अपना मुक्ततम और श्रेष्ठतम विकास करने का अवसर मिले।

मुक्तिबोध अपनी कविताओं में निहित वैचारिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना, शोषणमुक्त वर्गविहीन समाज की स्थापना का स्वप्न तथा अपनी अभिनव भाषा, बिम्ब और प्रतीक योजना को लेकर हिन्दी के विशिष्ट कवि हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मध्यवर्गीय चेतना और प्रामाणिक अनुभूतियों के कवि हैं। नई कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी कविता के विषय मध्यवर्ग के संघर्षों, स्वार्थों के साथ ही लोक–जीवन के अलक्षित प्रसंगों को बनाया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने बदलते हुए यथार्थ को पहचाना। सर्वेश्वर का अपने परिवेश के साथ सिर्फ रागात्मक ही नहीं बल्कि उनमें अपने परिवेश को लेकर एक बेचैनी और उदासी का भी सम्बन्ध है। सर्वेश्वर अपनी कविता में निजी सुख–दुख के साथ ही समकालीन जगत के बाह्य यथार्थ को भी चित्रित करते हैं। वे जहां निजी सुख–दुख का चित्रण करते हैं वह भी अपनी व्यापि में सार्वजनिक पीड़ा की अभिव्यक्ति

करता है। कवि वैयक्तिक चेतना से सामाजिक चेतना तक पहुंचता है। इस बिन्दु पर आकर कवि का कवि धर्म और उद्देश्य व्यापक हो जाता है। यह सम्प्रेषण की एक समर्थ प्रक्रिया है जो कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा करता है।

सर्वेश्वर एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने नई कविता का मुहावरा बदल दिया। भाषा का इतना रचनात्मक प्रयोग सर्वेश्वर से पहले किसी कवि ने नहीं किया था। प्रयोगवाद और नई कविता की सांस्कृतिक शब्दावली के वर्चस्व के बीच सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने लोकजीवन की भाषा और शब्दों की प्रतिष्ठा दिलाई।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नई कविता के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से हिन्दी कविता का विस्तार किया। नये विषय, भाषा के नये मुहावरे, कहने की नई शैली के साथ ही जनता और कविता के बीच के सम्बन्ध को और अधिक मजबूत किया।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **समीप** : नजदीक।
- **शिकस्त** : पराजय, हार।
- **आश्रित** : किसी के सहारे रहना।
- **तूणीर** : बाण।
- **प्रयास** : कोशिश।
- **अकिंचन** : गरीब।
- **दंश** : दर्द, पीड़ा।
- **परिवेश** : वातावरण।
- **उपेक्षा** : तिरस्कार।
- **विषैला** : जहरीला।
- **अहेरी** : शिकारी।
- **भूमिसुत** : पृथ्वी का पुत्र।
- **धीरज** : धैर्य, हौसला।
- **अधीर** : धैर्यहीन।
- **अश्रु** : आंसू।
- **पीड़ा** : दुख।
- **कुतूहल** : उत्सुकता।

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. वैद्यनाथ मिश्र।
2. मैथिली काव्य संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए।
3. (क) सही (ख) गलत।
4. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन।
5. 1943 में।
6. (क) गलत (ख) सही।
7. 'नया खून' में।
8. 13 नवम्बर, 1917 को श्यौपुर, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)।
9. (क) सही (ख) गलत।
10. सहायक सम्पादक के पद पर।
11. सन् 1982 में।
12. (क) सही (ख) गलत।

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नागार्जुन के संक्षिप्त जीवन–परिचय का उल्लेख कीजिए।
2. अज्ञेय के प्रयोगवाद को परिभाषित कीजिए।
3. मुक्तिबोध के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझाइए।
4. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्य विशेषताएं बताइए।
5. नागार्जुन की जनपक्षधरता को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक काल के कवियों का साहित्य में क्या योगदान है? वर्णन कीजिए।
2. नागार्जुन की 'उनको प्रणाम' व 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविताओं की व्याख्या कीजिए।
3. अज्ञेय के प्रयोगवाद की विस्तार से समीक्षा कीजिए।
4. मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एवं नागार्जुन की काव्यगत चेतना का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- रामस्वरूप चतुर्वेदी, *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या*, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
- चंद्रकांत देवताले, *मुक्तिबोध : कविता और जीवन विवेक*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली (2003)
- डॉ. शशि शर्मा, *समकालीन कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में*, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
- डॉ. उर्मिला जैन, *आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रांति की विचारधाराएं।*
- डॉ. प्रकाश चंद्र भट्ट, *नागार्जुन : जीवन और साहित्य।*
- यतींद्रनाथ गौड़, *बाबा नागार्जुन, जीवनी और चुनिंदा साहित्य।*
- नागार्जुन, *'हजार हजार बांहों वाली'* काव्य संग्रह एवं अन्य कवि के काव्य संग्रह।

4.3 संक्षेपण, पल्लवन एवं टिप्पण

4.3.1 संक्षेपण

'संक्षेप' शब्द से 'संक्षिप्त' बना है, जिसका अर्थ है लघु या छोटा। संक्षेपण उस विधि को कहते हैं जो विस्तृत को लघु अथवा बड़े को छोटा करने की प्रक्रिया को व्यक्त करता है। संक्षिप्तीकरण से तात्पर्य किसी ऐसे लेख आदि से है जो किसी बड़े आकार वाले लेख, निबंध तथा वक्तव्य आदि का संक्षिप्त किया हुआ अथवा सार रूप में प्रस्तुत किया हुआ रूप है।

• संक्षेपण का महत्व

आधुनिक समाज में सबके लिए एक ऐसे मानसिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसमें कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए लेखन संबंधी कामकाज को त्वरित ढंग से पूरा किया जा सकता हो। संक्षेपण की इस कला और कुशलता से छात्रों के पठन पाठन तथा लेखन में भी सरलता, स्पष्टता, स्वच्छता और प्रभावकारिता जैसी विशेषताएं उत्पन्न होती हैं। उसमें शब्द-संयम, भाव संयम और चिंतन संयम की क्षमता बढ़ती है। अत: हम कह सकते हैं कि संक्षेपण से हमारे श्रम और समय की बचत होती है।

• संक्षेपण की विधि

1. मूल पाठ को सावधानीपूर्वक तब तक पढ़ा जाए (एक, दो, तीन बार तक) जब तक उसका आशय पूर्णत: स्पष्ट न हो जाए।
2. वाचन के बाद पाठ के मुख्य बिंदुओं को रेखांकित कर दिया जाए।
3. उसके बाद केंद्रीय भाव को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त शीर्षक का चुनाव किया जाए। अच्छे शीर्षक का चयन छात्र की योग्यता और बुद्धिमता का परिचायक होता है।
4. रेखांकित किए गए मूल बिंदुओं अथवा मुख्य कथनों को ध्यान में रख कर अपनी शब्दावली में उसको स्पष्ट करें।
5. मूल पाठ को अनिवार्य रूप से एक-तिहाई कलेवर में लिखने का प्रयास करें।
6. उत्तम पुरुष अथवा मध्यम पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाए।
7. इस प्रारूपण में से भी अनावश्यक बातों और शब्दों को काट-छांट कर प्रारूप को अंतिम रूप दिया जाए।

8. संक्षेपण को अंतिम रूप देने से पहले उसका प्रारूप अथवा रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।

9. अवतरण के मूल कथ्य की आलोचना कभी न की जाए। उदाहरणों, दृष्टांतों अथवा लोकोक्तियों व मुहावरों तथा जहां तक हो सके, विशेषणों आदि से भी बचना चाहिए और सीधे उद्धृत अंश अथवा अवतरण के मूल कथ्य पर ही ध्यान केंद्रित रखना चाहिए। एक आदर्श संक्षेपण में, मूल कथ्य में न तो लेखक अपनी ओर से कुछ जोड़ता है और न कुछ कम करता है।

10. एक आदर्श संक्षेपण में बोधगम्यता, संक्षिप्तता तथा प्रभावोत्पादकता आदि गुणों का निर्वाह होना चाहिए।

संक्षेपण के संबंध में निम्नलिखित बातें अनिवार्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

1. संक्षेपण में मूल रचना के कथ्य अथवा अभिप्राय में तनिक भी अंतर नहीं आना चाहिए।
2. मूल रचना के आकार को लगभग एक-तिहाई रूप में रह जाना चाहिए।
3. लेखक अपनी ओर से उदाहरण अथवा उद्धरण आदि न दे।
4. अनावश्यक और अप्रासंगिक बातों का समावेश नहीं होना चाहिए।
5. संक्षेपण में व्यास-शैली के स्थान पर समास-शैली का प्रयोग किया जाता है।
6. मूल रचना का संक्षिप्तीकृत रूप प्रभावशाली और आकर्षक होना चाहिए।

• संक्षेपण की विशेषताएं/गुण

संक्षेपण में निम्नलिखित विशेषताओं या गुणों का समावेश होता है–

1. **संक्षिप्तता**– संक्षेपण का केंद्र-बिंदु ही संक्षिप्तता है। अनावश्यक बातों के लिए संक्षेपण में कोई स्थान नहीं होता। इसमें दृष्टांत देकर व्याख्या का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, वरन मूल अनुच्छेद/अवतरण के सभी विचारों को कम-से-कम शब्दों में रखने का प्रयास किया जाता है।

2. **समाहार शक्ति**–संक्षेपण में 'गागर में सागर' समेट लेने की अद्भुत क्षमता होनी चाहिए। सतसई के दोहे इसका सटीक उदाहरण हैं, जो देखने में तो छोटे लगते हैं परंतु अपनी बात को स्वत: स्पष्ट करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

3. **अभिव्यक्ति में स्पष्टता**– संक्षिप्तता का तात्पर्य यह नहीं है कि कोई ऐसी बात छूट जाए जो आवश्यक है या संक्षेपण अस्पष्ट हो जाए। यदि मूल अनुच्छेद को पढ़ने की आवश्यकता पड़े तो फिर संक्षेपण तैयार करने से लाभ ही क्या? सार लेखन की अभिव्यक्ति स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे कि सार-लेख को पढ़ने से सब कुछ स्पष्ट हो जाए।

4. **तारतम्यता**– संक्षेपण में तारतम्यता का होना भी नितांत आवश्यक है। असंबद्ध विचारों का पाठक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अच्छे संक्षेपण में अनुच्छेद के सभी वाक्य

एक दूसरे से शृंखलाबद्ध रूप में जुड़े रहते हैं। इसमें जहां एक विचार से दूसरे विचार में तारतम्य रहना चाहिए, वहीं मूल भाव भी सुरक्षित रहना चाहिए।

5. **विवेचनात्मकता**- संक्षेपण के लिए यह भी आवश्यक है कि संक्षेपक/सार लेखक पैनी बुद्धि का परिचायक हो। उसमें तथ्यों को परखने और उनका सही विवेचन दर्शाने की क्षमता होनी चाहिए।

7. **पूर्णता**– संक्षेपण में मूलभाव पूर्ण रूप से सुरक्षित रहना बहुत जरूरी है, यही संक्षेपण की पूर्णता है।

8. **प्रभावोत्पादकता**– संक्षेपण के भावों में जहां निश्चित क्रम बना रहना चाहिए, वहीं उसके समग्र रूप का प्रभावोत्पादक होना आवश्यक है। क्रम यदि बिखरा है तो इसके प्रभावी होने में बाधा पड़ती है। भावों में क्रमबद्धता, संक्षेपण को प्रभावशाली बनाने में सहायता करती है।

संक्षेपण विषयक कुछ अन्य उल्लेखनीय बातें

1. संक्षिप्तीकरण करते समय संबद्ध अवतरण का शीर्षक देना संक्षेपण का अंग तो नहीं है, लेकिन उपयुक्त और सटीक शीर्षक से संक्षेपणकर्ता की सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता का परिचय अवश्य मिलता है। उपयुक्त शीर्षक-चयन से परीक्षक यह जान लेता है कि परीक्षार्थी अवतरण के केंद्रीय भाव को समझता है।

2. कभी-कभी अवतरण में कुछ वाक्यों-वाक्यांशों या शब्दों को रेखांकित करके उनका अर्थ पूछ लिया जाता है। यह अर्थ बहुत संक्षिप्त और सटीक होना चाहिए।

3. अवतरण के संक्षेपण के लिए जो कच्चा काम (Rough-Work) करें, वह उत्तर-पुस्तिका के अंतिम पृष्ठ पर करें। बाद में उसे काट दें।

4. सारांश और संक्षेपण के अंतर को ध्यान में रखते हुए ही संक्षेपण करें।

5. जिन क्लिष्ट शब्दों का अर्थ आपको न आता हो, उनको बार-बार पढ़-कर संपूर्ण अवतरण में उनके आशय को ही लिखें।

6. पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त अवतरण के शब्दों-वाक्यों की पुनरावृत्ति न करें।

पूरा लिख चुकने पर एक बार आद्योपांत पढ़ लें।

संक्षेपण के उदाहरण

अवतरण (1)

प्रेमचंद के सामने एक ऐसा युगीन-परिवेश था जिसमें देश धीरे-धीरे बंटता और टूटता जा रहा था। वर्ष 1914 तक औद्योगिक विकास मंद गति से होने के कारण साम्राज्यवादी शोषण अत्यंत तीव्र और गांव की अर्थव्यवस्था पंगु हो गई थी। इसका सबसे अधिक बुरा प्रभाव कारीगरों, हरिजनों, मजदूरों और छोटे किसानों पर पड़ा। अर्थव्यवस्था की इस स्थिति ने सूदखोरों और महाजनों की कतार पैदा कर दी। किसान अपनी ही जमीन पर मजदूर होता गया। जमीन जोतने वाला भू-स्वामित्व के अधिकार से वंचित होकर खेतिहर मजदूर होने लगा। यह वर्ग भुखमरी से बचने के लिए बड़ी संख्या में रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर भागने लगा। वहां भी पूंजीपतियों ने उनका मनमाना शोषण किया। प्रेमचंद जी ने गोदान में किसानों की व्यक्तिगत

तथा वर्गीय विसंगतियों व अंतर्विरोधों को बहुत तटस्थता से पहचाना है, लेकिन इस अंतर्विरोध-उद्घाटन से किसानों की बेबसी और यातना की नियति ही अधिक खुलती है। इसका कारण यह है कि यह सुविधा-भोगी वर्ग से दूहा गया है। यह कैसी विडंबना है कि पैसा सारी व्यवस्था के केंद्र में है। जमींदार, उसका कारिंदा, पटवारी, छोटे जमींदार, पुरोहित आदि बाह्य दृष्टि से भले ही अलग-अलग हों, किंतु किसानों का शोषण करते समय इनकी एकता देखते ही बनती है।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

शीर्षक : प्रेमचंद के मजदूर - किसान

संक्षेपण– प्रेमचंद के समय का सामाजिक परिवेश ऐसा था जिसमें तीव्र साम्राज्यवादी शोषण के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। जमींदार, उसके कारिंदे पटवारी, छोटे जमींदार तथा पुरोहित आदि बड़े शोषण-तंत्र के पुर्जे थे। इनके शोषण से किसान भू-स्वामित्व से वंचित होकर अपनी ही भूमि पर मजदूरी करने लगा। गांव के शोषकों से बचकर कृषक वर्ग नगरों की ओर त्राण पाने गया, तो वहां भी पूंजीपतियों के शोषण से बच न सका।

अवतरण (2)

कबीर के साहित्य में राम की परिकल्पना का मूल आधार भारतीय दार्शनिक चिंतन तो अवश्य है पर उसे अपनी सहज सहानुभूति में ढालकर कबीर ने जिस विशिष्ट भावना को आत्मसात किया है, वह विभिन्न 'वादों' की सीमाओं का अतिक्रमण कर उसका अपना निजी राम बन गया। इसलिए यह राम अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, इस्लामी एकेश्वरवाद, सिद्धों के शून्यवाद तथा योगियों के अलख निरंजन आदि की परम तत्व संबंधी धारणाओं से अनेक बिंदुओं पर साम्य स्थापित करता हुआ भी इन सबसे सर्वथा पृथक है। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने दार्शनिक आचार्यों की तरह राम या परमतत्व संबंधी कोई नई स्थापना की है और न यह ही, कि उन्होंने दर्शकों से थोड़ा बहुत इकट्ठा कर 'भानुमति का कुनबा' ही खड़ा किया है। वे बहुश्रुत थे और विविध मतों के अनुयायियों की संगति से उनके विचारों की स्थूल बातें ग्रहण कर ली थीं। इन्हीं विचारों को उन्होंने अपनी जीवन दृष्टि और स्वानुभूति के निष्कर्ष पर चढ़ाकर, जैसा उपयुक्त समझा, वैसा ही सामने रखा। अत: कबीर-साहित्य का यह राम किसी दर्शन-विशेष की उत्पत्ति न होकर उनकी अपनी उपलब्धि है। इसी परिप्रेक्ष्य में कबीर को 'राम' की परिकल्पना का विचार करना युक्ति युक्त है।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

शीर्षक: कबीर के राम

संक्षेपण– अद्वैतवाद आदि अनेक दार्शनिक मत-वादों से समानता रखते हुए भी कवि की स्वानुभूति की आंच में तपकर, वाद-मुक्त होकर 'राम', कबीर साहित्य में 'कबीर का अपना राम' बन गया है। कबीर अनेक महापुरुषों के उपदेश से लाभान्वित हुए थे। इसीलिए अनेक मतावलंबियों के मतों के सार रूप को ग्रहण कर उन्होंने अपनी अनुभूति और जीवन-दृष्टि की कसौटी पर परखते हुए अपनी नवीन दृष्टि के आलोक में राम के स्वरूप को प्रस्तुत किया।

साहित्य का आधार जीवन है। इस नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियां, मीनारें और गुंबद बनते हैं, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसको देखने को जी नहीं चाहेगा. जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसीलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिचित है। जीवन परमात्मा को अपने कार्यों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके अपने कानून हैं, जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकता। जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवन पर्यंत आनंद की ही खोज में लगा रहता है। किसी को वह रत्न-द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे पूरे परिवार में, किसी को लंबे-चौड़े भवन में तो किसी को ऐश्वर्य में। लेकिन साहित्य का आनंद इससे ऊंचा है, इससे पवित्र है। उसका आधार सुंदर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है। उसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोग के आनंद में ग्लानि छिपी रहती है। उससे अरुचि भी हो सकती है। पश्चाताप भी हो सकता है। पर 'सुंदर' से जो आनंद प्राप्त होता है, वही अखंड एवं अमर है।

ऐसे 'आनंद' साहित्य में 'नीरस' कहे गए हैं। प्रश्न होगा, वीभत्स में कोई आनंद है? अगर ऐसा न होता तो वह रसों में ही क्यों गिना जाता? हां, है। वीभत्स में सुंदर और सत्य मौजूद है। भारतेंदु ने श्मशान का वर्णन किया है, वह कितना वीभत्स है! प्रेतों और पिशाचों का अधजले मांस के लोथड़े, हड्डियों को चटर-चटर चबाना, वीभत्स की पराकाष्ठा है। लेकिन वह वीभत्स होते हुए भी सुंदर है, क्योंकि उसकी सृष्टि पीछे आने वाले स्वर्गीय दृश्य के आनंद को तीव्र करने के लिए हुई है। साहित्य तो हर एक रस में 'सुंदर' खोजता है– राजा के महल में, रंक की झोंपड़ी में, पहाड़ के शिखर पर, गंदे नालों के अंदर, ऊषा की लाली में, सावन-भादों की अंधेरी रात में और क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि रंक की झोंपड़ी में जितनी आसानी से सुंदर मूर्तिमान दिखाई देता है, उतना महलों में तो वह खोजने से भी मुश्किल से मिलता है। जहां मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनंद है। आनंद कृत्रिमता और आडंबर से कोसों दूर भागता है। सत्य का कृत्रिम से क्या संबंध? अतएव हमारा विचार है कि साहित्य में केवल एक रस है, और वह शृंगार है। कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की गणना ही साहित्य में की जा सकती है जो शृंगारविहीन और असुंदर है। जो रचना केवल वासना-प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावों को जगाना हो, जो केवल बाह्य जगत से संबंध रखे, वह साहित्य नहीं। जासूसी उपन्यास अद्भुत होता है, लेकिन हम उसे साहित्य उसी समय कहेंगे जब उसमें सुंदर का समावेश हो।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

शीर्षक : सुंदर और सत्य ही आनंद

संक्षेपण– जीवन ही साहित्य का आधार है, परंतु जीवन में अनेक चित्र ऐसे होते हैं, जो रम्य नहीं होते। लेकिन साहित्य में असुंदर वस्तु भी आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जाती है, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य ही प्रत्येक रचना को सरस रूप में प्रस्तुत करना है। सत्य एवं सुंदर का आकर्षक रूप साहित्य में प्राप्त होता है, जो सर्वथा रुचिप्रद होता

है। सांसारिक ऐश्वर्यजन्य आनंद अरुचिकर एवं ग्लानिप्रद भी हो सकता है परंतु साहित्यानंद तो शाश्वत एवं रम्य है। वीभत्स दृश्य वैसे तो अरुचिकारक होते हैं, परंतु हरिश्चंद्रजी का श्मशान वर्णन भी लोकोत्तर एवं चमत्कारपूर्ण है, क्योंकि उसमें नैसर्गिकता है। साहित्य द्वारा मनुष्य के श्रेष्ठ भावों को उद्‌बुद्ध किया जाता है। जासूसी उपन्यास भी यदि सत्य एवं सुंदर हों तो वे भी चमत्कारोत्पादक एवं श्रेष्ठ साहित्य हो सकते हैं।

अवतरण (4)

आधुनिक संस्कृति मूलत: बुद्धिवादी और विश्लेषण-प्रिय है, जिसमें ज्ञान की अपार महिमा है, परंतु हृदय के स्रोत निरंतर सूखते जा रहे हैं। जिसे शिक्षा कहकर चलाया जा रहा है, वह सूचना मात्र है। उसमें अनुभूति को जगह नहीं मिली है। फलत: आज का शिक्षित मनुष्य व्यर्थता से भर गया है। कविता का स्रोत है–आनंद, जिज्ञासा एवं रहस्य। हमारे ज्ञान की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि कुछ भी अप्रत्याशित नहीं रह गया है। काव्यरूढ़ियां आज हास्यास्पद जान पड़ती हैं। अद्‌भुत का थोड़ा भी स्पंदन जीवन में शेष नहीं रह गया है। वैसे, ज्ञान और कविता में निरंतर विरोध ही हो, यह आवश्यक नहीं, क्योंकि विज्ञान रहस्योन्मुखी है। इसमें जिज्ञासा और समाधान के अनेक सूत्र हैं। परंतु आज विज्ञान विशेषता के उस संसार में पहुंच गया है, जहां तालिकाओं का राज्य है और मानव-शिशु तथ्यों की मरुभूमि में खो गया है। फल यह हुआ कि हम अहं के स्तूप बन गए हैं। हम चमत्कृत होने में मानहानि समझते हैं। हमारी सहज अंतर्वृत्तियां जड़ होती जा रही हैं।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

शीर्षक : अनुभूति राहत शिक्षा

संक्षेपण– आधुनिक शिक्षा अनुभूति-पक्ष से रहित है। इसमें बुद्धि की प्रधानता होने से मनोगत विकारों का कोई स्थान नहीं है, इसीलिए यह आकर्षक भी नहीं रही है। कविता और विज्ञान में कोई बैर-भाव नहीं, फिर भी आधुनिक विज्ञान रहस्यों का प्रतिपादन करने के कारण महत्वशाली बन गया है। अत: मानव आज सहृदय न रहकर तथ्यग्राही बन गया है।

कुछ अवतरण अभ्यासार्थ

1. लाखों अहिंदी भाषियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया, उसे राष्ट्रीय गौरव के शिखर पर बैठाया। लेकिन विपरीत परिस्थितियों ने धीरे-धीरे उसे एक-एक सीढ़ी उतारना शुरू कर दिया और अब राष्ट्रभाषा मात्र संपर्क-भाषा बन कर रह गई है। इसका कारण यह है कि अब हिन्दी का कार्य सरकार के भरोसे छोड़ दिया गया है। सरकारी कर्मचारी/अधिकारी राजतंत्र चला सकते हैं, लोकतंत्र नहीं। सरकारी कर्मचारी/अधिकारी हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में फाइलों में जिंदा रख सकते हैं, व्यवहार में नहीं। राष्ट्रभाषा के रूप में वे इसे अपेक्षित प्रतिष्ठा नहीं दे सकेंगे। लोकतंत्र और राष्ट्रभाषा दोनों को साथ-साथ चलना चाहिए। हम भाग्यशाली हैं कि लोकतंत्र को लंगड़ा बनाने वाली शक्तियां प्रबल नहीं हो पाईं, लेकिन राष्ट्रभाषा के रास्ते पर कांटे बिखरने वाले कम नहीं हुए, इसीलिए अब हिन्दी की वकालत हिन्दी

में नहीं, दूसरी भाषाओं के माध्यम से होगी, तभी हिन्दी का पक्ष मजबूत होगा, वरना हिन्दी की सारी विशेषताएं तर्क के तराजू में हल्की पड़ती जाएंगी।

2. जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण और आश्रम-चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में साहित्यिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनंद में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखाई देगा। भारतीय नाटकों में भी सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाए गए हैं, पर सबका अवसान आनंद में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष करने और उसे उन्नत बनाने का रहा है।

3. भारत वर्ष की मिट्टी में युग के अनुरूप महापुरुषों को जन्म देने का अद्‌भुत गुण है। आज से पांच सौ वर्ष पहले का देश अनेक कुसंस्कारों में उलझा था। जातियों, संप्रदायों, धर्मों और संकीर्ण कुलाभिमानों से वह खंडित और विच्छिन्न हो गया था। देश में नये धर्म के आगंतुकों के कारण एक ऐसी समस्या उठ खड़ी हुई थी, जो इस देश के हजारों वर्षों के लंबे इतिहास से अपरिचित थी। ऐसे ही दुर्घटना काल में इस देश की मिट्टी ने ऐसे अनेक महापुरुषों को उत्पन्न किया, जो सड़ी रूढ़ियों, मृतप्राय आचारों, बासी विचारों ओर अर्थहीन संकीर्णताओं के विरुद्ध प्रहार करने में कुंठित नहीं हुए और इन जर्जर बातों से परे सब में विद्यमान नई ज्योति और नया जीवन प्रदान करने वाले महान् जीवन-देवता की महिमा प्रतिष्ठित करने में सफल हुए। इन संतों की ज्योतिष्क मंडली में गुरु नानकदेव ऐसे संत हैं, जो शरत्काल के पूर्ण चंद्र की तरह स्निग्ध, उसी प्रकार शांत-निर्मल, उसी प्रकार रश्मि के भंडार थे।

4. पुरुषार्थ वह है जो पुरुष को सप्रयासरत रखे, साथ ही सहयुक्त भी रखे। यह जो सहयोग है, सच में पुरुष और भाग्य का ही है। पुरुष अपने अहं से वियुक्त होता है, तभी भाग्य से संयुक्त होता है। लोग जब भाग्य को पुरुषार्थ से अलग और विपरीत करते हैं, तो कहना चाहिए कि वे पुरुषार्थ को ही उसके अर्थ से विलग और विमुख कर देते हैं। पुरुष का अर्थ क्या पशु का ही अर्थ है? बल-विक्रम तो पशु में ज्यादा होता है। दौड़-धूप निश्चय ही पशु अधिक करता है। लेकिन यदि पुरुषार्थ पशुचेष्टा के अर्थ से कुछ भिन्न और श्रेष्ठ है तो इस अर्थ में कि वह केवल हाथ-पैर चलाना नहीं है, न क्रिया का वेग और कौशल है, बल्कि वह स्नेह और सहयोग की भावना है। सूक्ष्म भाषा में कहें, तो उसकी कर्तव्य-भावना है। वासना से पीड़ित होकर पशु में अद्‌भुत पराक्रम देखा जा सकता है। किंतु यह पुरुष के लिए ही संभव है कि वह आत्म-विसर्जन में पराक्रम कर दिखाए।

5. यह अध्यापक का काम है कि वह अपने छात्र में चित्त एकाग्र करने का अभ्यास डाले। एकाग्रता ही आत्म-साक्षात्कार की कुंजी है। एकाग्रता का उपाय यह है कि छात्र

में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का भाव उत्पन्न किया जाए और उसे निष्काम कर्म में प्रवृत्त किया जाए। दूसरे के सुख को देखकर सुखी होना मैत्री और दुःख देखकर दुखी होना करुणा है। किसी को अच्छा काम करते देखकर प्रसन्न होना और उसका प्रोत्साहन करना मुदिता और दुष्कर्म का विरोध करते हुए अनिष्टकारी से शत्रुता न करना उपेक्षा है। ज्यों-ज्यों ये भाव जागते हैं, त्यों-त्यों ईर्ष्या-द्वेष में कमी होती है। निष्काम कर्म भी राग-द्वेष को नष्ट करता है। ये बातें हंसी-खेल नहीं हैं, परंतु चित्त को उधर फेरना तो होगा ही, सफलता चाहे बहुत धीरे ही प्राप्त हो। इस प्रकार का प्रयास भी मनुष्य को ऊपर उठाता है।

6. व्यक्ति के लिए घुमक्कड़ी से बढ़कर कोई धर्म नहीं। जाति का भविष्य घुमक्कड़ी पर निर्भर करता है, इसीलिए मैं कहूंगा कि हरेक तरुण और तरुणी को घुमक्कड़ व्रत ग्रहण करना चाहिए, इसके विरुद्ध दिए जाने वाले सारे प्रमाणों को झूठ और व्यर्थ का समझना चाहिए। यदि माता-पिता विरोध करते हैं, तो समझना चाहिए कि वे भी प्रहलाद के माता-पिता के नवीन संस्करण हैं। यदि हित-बांधव बाधा उपस्थित करते हैं, समझना चाहिए कि वे दिवांध हैं। यदि धर्माचार्य कुछ उल्टा-सीधा तर्क देते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि इन्हीं ढोंगियों ने संसार को कभी सरल और सच्चे पथ पर चलने नहीं दिया। यदि राज्य और राजसी नेता अपनी कानूनी रुकावटें डालते हैं, तो हजारों बार की तजुर्बा की हुई बात है कि महानदी के वेग की तरह घुमक्कड़ की गति को रोकने वाला दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। बड़े-बड़े कठोर पहरे वाली राज्य-सीमाओं को घुमक्कड़ों ने आंख में धूल झोंककर पार कर लिया।

7. राष्ट्र का तीसरा अंग जन की संस्कृति है। मनुष्य ने युगों-युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया, वही उसके जीवन का श्वास-प्रश्वास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना निरर्थक है, संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ-साथ जन की संस्कृति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यदि भूमि और जन को अपनी संस्कृति से विहीन कर दिया जाए, तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौंदर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौंदर्य और यश अंतर्निहित है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसने वाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं।

8. कर्तव्य वह वस्तु है, जिसे करना हम लोगों का परम धर्म है और जिसके न करने से हम और लोगों की दृष्टि से गिर जाते हैं और अपनी कुरुचि से नीच बन जाते हैं। प्रारंभिक अवस्था में कर्तव्य का करना बिना निर्वाह के नहीं हो सकता, क्योंकि पहले-पहल मन आप ही उसे करना नहीं चाहता। इसका प्रारंभ भी घर से ही होता है, क्योंकि यहां लड़कों का कर्तव्य माता-पिता के प्रति और माता-पिता का कर्तव्य लड़कों के प्रति दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त पति-पत्नी, स्वामी-सेवक और स्त्री-पुरुष के परस्पर अनेक कर्तव्य हैं। घर के बाहर हम मित्रों, पड़ोसियों और अन्य

व्यक्तियों के परस्पर कर्तव्य को देखते हैं, इसलिए संसार में मनुष्यों का जीवन कर्तव्यों से भरा पड़ा है। जिधर देखो, उधर कर्तव्य ही कर्तव्य दिखाई पड़ते हैं। बस, इसी कर्तव्य का पालन करना हम लोगों का धर्म है और इसी से हम लोगों के चरित्र की शोभा बढ़ती है। कर्तव्य करना न्याय पर निर्भर है और वह न्याय ऐसा है, जिसे समझने पर हम लोग प्रेम के साथ उसे कर सकते हैं।

9. स्वावलंबी मनुष्यों की यश-कीर्ति पूर्णिमा की चंद्रिका के समान चारों ओर फैलती है। उनका यशगान चारण और भाट शताब्दियों तक किया करते हैं। कवियों और लेखकों की लेखनी उनकी धवल कृतियों का बखान किया करती है। उनका अभिनय रंगशालाओं तथा चित्रपटों पर हुआ करता है। पाठक और श्रोता मनोरंजन के अतिरिक्त उनसे नित्य नए पाठ सीखा करते हैं। मनुष्य की कीर्ति उसकी शारीरिक सुंदरता नहीं वरन् उसकी पुण्य-कृतियों से फैलती है।

10. लेखक का काम बहुत से अंशों में मधुमक्खियों के काम से मिलता है। मधुमक्खियां मधु के लिए कोसों का चक्कर लगाती हैं और अच्छे-अच्छे फूलों पर बैठकर उनसे रस लेती हैं। तभी तो उनके मधु में संसार की सर्वश्रेष्ठ मधुरता रहती है। यदि आप अच्छे लेखक बनना चाहें तो आपको यही वृत्ति ग्रहण करनी चाहिए। फिर आपकी रचनाओं में भी मधु का सा माधुर्य आने लगेगा। कोई अच्छी उक्ति, कोई अच्छा विचार, भले ही वह दूसरों से ग्रहण किया गया हो, पर यदि मनन कर आप उसे अपनी रचना में स्थान देंगे तो वह आपका ही हो जाएगा। मननपूर्वक लिखी हुई वस्तु के संबंध में शीघ्र किसी को यह कहने का साहस न होगा कि यह अमुक स्थान से ली गई है। जो बात आप भली-भांति आत्मसात कर लेंगे वह फिर आपकी ही हो जाएगी।

11. प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करके प्रयास-शक्ति या परिश्रम-शक्ति को प्रबल रखो। पानी में डूबने का मौका कभी ही पड़ता है परंतु यदि तैरने का अभ्यास नहीं किया गया तो डूबते समय पछताना ही पड़ेगा। जो सौदागर जहाज पर माल ले जाते हैं, वे अपने माल का बीमा कराते हैं और हमेशा बीमे के लिए फीस देते हैं। उसमें उन्हें कोई लाभ नहीं होता। परंतु यदि जहाज डूब जाए तो उन्हें अपने माल का पूरा मूल्य मिलता है और बीमा की फीस देने का आनंद मालूम होता है। इसी प्रकार करने का अभ्यास बना रहे तो किसी समय पर कोई भी कठिनाई आ पड़े, अभ्यासी आदमी सुखपूर्वक उस कठिनाई को पार कर लेगा। इसीलिए छोटी-छोटी बातों में भी उचित परिश्रम करने और उचित ध्यान देने की बात बच्चों में होनी चाहिए।

12. प्राय: लोग प्रश्न करते हैं– अहिंसा का क्या अर्थ है? अहिंसावादी को प्याज, टमाटर का भक्षण करना चाहिए या नहीं? इस प्रश्न पर सभी को उलझन है। मैं कहता हूं अहिंसा का इन बातों से कोई संबंध नहीं। यह आपकी इच्छा पर निर्भर करता है। आप चाहें तो इनका भोग करिए और चाहें तो मत करिए, किंतु एक सच्चा अहिंसक बनने के लिए आपको इस बात का ध्यान अवश्य रखना होगा कि आप स्वयं को क्रोध, प्रतिशोध, घृणा आदि से दूर रखें। आप अपने संकीर्ण दृष्टिकोण को व्यापक व उदार बनाएं, मन में जो विषैले जंतु कुंडली मारकर बैठे हैं, उन्हें दूर भगाएं, मन

को साफ रखें तथा सबके प्रति समता भाव बनाए रखें। मैं कहता हूं यही अहिंसा है। सच्ची अहिंसा ही सच्ची मानवता है और सच्ची मानवता ही सच्ची अहिंसा है।

13. जीवन की सादगी से तात्पर्य अभाव एवं दरिद्रता से नहीं है। एक समय रूखी-सूखी खाने वाले किसान, जंगल में पड़े रहने वाले कंजर और एक कमीज में जाड़ा बिताने वाले भिखमंगे का जीवन सादा नहीं कहा जा सकता। वे शराब के सेवन और कपड़ों की चोरी से नहीं हिचकिचाते। यही कारण है कि उनके विचार उच्च तो क्या एक साधारण व्यक्ति से भी गए-बीते होते हैं। दरिद्रता में पलने पर भी उनका मन ठाठ-बाट के जीवन में रमता रहता है। सादा जीवन होने के लिए धनी होना अनिवार्य शर्त नहीं है। गरीब आदमी भी संतोष करके उच्च विचार रख सकता है। अधिकतर उच्च विचार रखने वाले साधु या पंडित निर्धन ही रहे हैं।

• वाक्य संक्षेपण अथवा संक्षिप्त शब्दावली के उदाहरण–

शब्दावली/वाक्य-खंड	शब्द-संक्षेप
हृदय को विदीर्ण करने वाला	हृदय-विदारक
दूसरों के काम में दखल देना	हस्तक्षेप
काम करने में चतुर	सिद्धहस्त
जानने की इच्छा	जिज्ञासा
जिसका कोई नाथ (भरण-पोषण करने वाला) न हो	अनाथ
जिसके हृदय में ममता न हो	निर्मम
जिसके समान कोई दूसरा न हो	अद्वितीय
जिसके आने की तिथि मालूम न हो	अतिथि
जिससे हानि की आशंका न हो	निरापद
जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो	विचारणीय
जिसका कोई वारिस न हो	लावारिस
जिसने मृत्यु को जीता हो	मृत्युंजय
वह जो कम खर्च करता हो	मितव्ययी
जो जलकर राख हो जाए	भस्मीभूत
समझ में आने योग्य	बोधगम्य
जिसने बहुत सुना हो	बहुश्रुत
जैसे पहले था वैसे ही	पूर्ववत
वह वस्तु जिसके आर-पार दिखाई पड़े	पारदर्शी
कतार में बंधा/रखा हुआ	पंक्तिबद्ध
भले-बुरे का विचार न करने वाला	अविवेकी
अतिथि से सादर मिलना	अगवानी

को साफ रखें तथा सबके प्रति समता भाव बनाए रखें। मैं कहता हूं यही अहिंसा है। सच्ची अहिंसा ही सच्ची मानवता है और सच्ची मानवता ही सच्ची अहिंसा है।

13. जीवन की सादगी से तात्पर्य अभाव एवं दरिद्रता से नहीं है। एक समय रूखी-सूखी खाने वाले किसान, जंगल में पड़े रहने वाले कंजर और एक कमीज में जाड़ा बिताने वाले भिखमंगे का जीवन सादा नहीं कहा जा सकता। वे शराब के सेवन और कपड़ों की चोरी से नहीं हिचकिचाते। यही कारण है कि उनके विचार उच्च तो क्या एक साधारण व्यक्ति से भी गए-बीते होते हैं। दरिद्रता में पलने पर भी उनका मन ठाठ-बाट के जीवन में रमता रहता है। सादा जीवन होने के लिए धनी होना अनिवार्य शर्त नहीं है। गरीब आदमी भी संतोष करके उच्च विचार रख सकता है। अधिकतर उच्च विचार रखने वाले साधु या पंडित निर्धन ही रहे हैं।

• वाक्य संक्षेपण अथवा संक्षिप्त शब्दावली के उदाहरण–

शब्दावली/वाक्य-खंड	शब्द-संक्षेप
हृदय को विदीर्ण करने वाला	हृदय-विदारक
दूसरों के काम में दखल देना	हस्तक्षेप
काम करने में चतुर	सिद्धहस्त
जानने की इच्छा	जिज्ञासा
जिसका कोई नाथ (भरण-पोषण करने वाला) न हो	अनाथ
जिसके हृदय में ममता न हो	निर्मम
जिसके समान कोई दूसरा न हो	अद्वितीय
जिसके आने की तिथि मालूम न हो	अतिथि
जिससे हानि की आशंका न हो	निरापद
जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो	विचारणीय
जिसका कोई वारिस न हो	लावारिस
जिसने मृत्यु को जीता हो	मृत्युंजय
वह जो कम खर्च करता हो	मितव्ययी
जो जलकर राख हो जाए	भस्मीभूत
समझ में आने योग्य	बोधगम्य
जिसने बहुत सुना हो	बहुश्रुत
जैसे पहले था वैसे ही	पूर्ववत
वह वस्तु जिसके आर-पार दिखाई पड़े	पारदर्शी
कतार में बंधा/रखा हुआ	पंक्तिबद्ध
भले-बुरे का विचार न करने वाला	अविवेकी
अतिथि से सादर मिलना	अगवानी

ऐसे स्थान पर रहना जहां कोई पता न पा सके	अज्ञातवास
नीचे की ओर जाने वाला	अधोमुखी
जिसके बिना काम न चल सके	अनिवार्य
जो अवश्य हो, टले नहीं	अवश्यंभावी
जो नियत समय से पहले या पीछे हो	असामयिक
आज्ञा मानने वाला	आज्ञाकारी
किसी घटना का अचानक हो जाना	अकस्मात
संकट का समय	आपातकाल
वह जो किसी के न रहने पर उसकी संपत्ति का मालिक हो	उत्तराधिकारी
जिसका चित्त उदार हो	उदारमना
बहुत जगने के कारण अलसाया हुआ	उनींदा
दूसरे के सहारे पर गुजर करने वाला	उपजीवी/परजीवी
अन्य स्थान से आए हुए लोगों की बस्ती	उपनिवेश
एक ही पर श्रद्धा रखने वाला	एकनिष्ठ
काम करने के लिए कमर बांधे हुए	कटिबद्ध
सब लोगों के प्रयोग में आने वाला	सार्वजनिक
वर्तमान समय से संबंध रखने वाला	समसामयिक
सब-कुछ जानने वाला	सर्वज्ञ
मेहनत कर पेट भरने वाला	श्रमजीवी
जो वेतन लेकर काम करता है	वेतनभोगी
एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाया हुआ	स्थानान्तरित
जो दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से कार्य करे	स्थानापन्न
जिसकी आशा न की गई हो	आशातीत
जो भेदा न जा सके	अभेद्य
कम बोलने वाला	मितभाषी
जो स्मरण रखने योग्य हो	स्मरणीय
जो सबके आगे रहता है	अग्रणी
जिसे देख/सुन कर दु:ख हो	दु:खद
युग का निर्माण करने वाला	युग निर्माता
जिसका मन किसी दूसरी ओर हो	अन्यमनस्क
जहां तक हो सके	यथासाध्य/यथासंभव
आदि से अंत तक	आद्योपांत, आद्यंत
तर्क के द्वारा माना जा चुका हो	तर्कसम्मत

जिस पर विश्वास किया गया हो/किया जा सके	विश्वस्त
क्षण भर में नष्ट होने वाला	क्षणभंगुर
नियत समय पर किया जाने वाला कार्य	समयबद्ध
नियत समय पर मिलने संबंधी वचन का पालन करने वाला	समयनिष्ठ
किसी रूप में प्राप्त राशि का अंश जो प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में आए	लाभांश
जो नुकसान हो चुका है उसकी भरपाई करना	प्रतिकर
जो लोक में संभव न हो	अलौकिक
शक्ति के अनुसार	यथाशक्ति
समय के अनुसार	यथासमय
याचना करने वाला	याचक

शब्द निर्माण में भी संक्षेपण का विशेष महत्व है। शब्द निर्माण में संक्षेपीकरण के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

नार्थ एटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन	नाटो
इंडियन पीपुल थियेट्रिकल पिक्चर एसोसिएशन	इप्टा
युनाइटेड नेशंस एजुकेशनल साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन	यूनेस्को
इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस	इंटक
इंडियन मूवी पिक्चर एसोसिएशन	इम्पा
साउथ-ईस्ट एशियन ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन	सीटो

इन शब्दों के अलावा दैनिक जीवन में समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक लंबे वाक्यों के संक्षिप्त रूप देखने, पढ़ने व सुनने को मिलते हैं, जैसे-

सेल्फ एंप्लाइड वीमेंस एसोसिएशन	सेवा
एसोसिएशन ऑफ वॉलेंटरी एजेंसीज फॉर रूरल डेवलपमेंट	एवार्ड
भारतीय जनता पार्टी	भाजपा
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	भाकपा
भारतीय लोकदल	भालोद

4.3.2 पल्लवन

पल्लवन को वृद्धिकरण, विषदीकरण, संवर्धन या भाव-विस्तार आदि भी कहते हैं। डॉ. राघव प्रकाश पल्लवन के संदर्भ में लिखते हैं, "पल्लवन में किसी संक्षिप्त गूढ़ विचार-भाव, सूक्ति को विस्तार से स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है। लेखकों द्वारा रची गई या समाज में परंपरा से चली आती हुई कुछ सूक्तियां ऐसी होती हैं कि सामान्य व्यक्ति उनके मूल आशय को अच्छी तरह समझ नहीं सकता। ऐसी स्थिति में हमें उस उक्ति को खोलकर उदाहरण देते हुए

इस तरह से स्पष्ट करना चाहिए कि वह संक्षिप्त गूढ़ बात सभी को सहजता से बोधगम्य हो जाए।" अतः स्पष्ट है कि "लेखक के मूल लेख या वक्ता के कथन को विस्तार के साथ लिखने या अभिव्यक्त करने की क्रिया को पल्लवन या भाव विस्तार कहते हैं।" पल्लवन हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए-

1. दिए गए मूल वाक्य, सूक्ति लोकोक्ति पर ध्यानपूर्वक लिखने हेतु रूपरेखा का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. विचारों का विकास अत्यंत सोच-विचार के साथ, सहज संबद्धता के साथ होना चाहिए।
3. पल्लवन के लिए उदाहरणों और दृष्टांतों का यथासंभव प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. पल्लवन के लिए भाषा और उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट, मौलिक तथा सरल होनी चाहिए।
5. पल्लवन हेतु व्यास शैली का प्रयोग किया जाना चाहिए, वृद्धिकरण अन्य शैली में करें।
6. वृद्धि-करण के आकार की कोई निश्चित सीमा तो नहीं है, किंतु उसे अनावश्यक एवं अप्रासंगिक विस्तार देकर बहुत लंबा लिखना अपेक्षित नहीं है। पुनरावृत्ति तो होनी ही नहीं चाहिए। इसका उद्देश्य उस उक्ति में छिपे हुए विचारों को स्पष्ट करना है।
7. वृद्धिकरण 8 पंक्तियों से लेकर एक पृष्ठ तक हो सकता है।
8. वृद्धिकरण में मूल अवतरण का प्रसंग या संदर्भ देना जरूरी नहीं है, न ही उसके शब्दों का अर्थ समझाकर उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता है। उस उक्ति के साहित्यिक सौंदर्य का उद्घाटन भी जरूरी नहीं है। इस प्रकार वृद्धिकरण व्याख्या न होकर अवतरण के विचार को विस्तार देना तथा बढ़ाना मात्र है।

1. **लोकोक्ति**–जीवन एक फूल है प्रेम उसकी सुगंध

पल्लवन- प्रकृति ने फूलों के रूप में मानव को इतनी महत्वपूर्ण सौगात सौंपी है कि उसका जीवन फूलों का संसर्ग होते ही महक उठता है। महक या सुगंध पुष्प-जगत का निष्कर्ष है तो मानव-जगत का निष्कर्ष है प्रेम। यदि जीवन में से प्रेम को हटा दिया जाए तो वह बिना सुगंध के फूल की तरह हो जाएगा। सुगंध है तो फूल है। ज्ञात रहे कि जिन फूलों में सुगंध नहीं होती, उन्हें प्रयोग में नहीं लिया जाता अपितु फेंक दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार, यदि जीवन में प्रेम न हो तो यह सांसों का श्मशान स्थल बनकर रह जाएगा। किसी ने सच कहा है कि जीवन एक फूल है और प्रेम उसकी सुगंध।

2. **लोकोक्ति**-"अधजल गगरी छलकत जाय" अथवा "थोथा चना बाजे घना"

पल्लवन- गंभीरता एक दुर्लभ गुण है। किसी भी प्रकार की समृद्धि को संभाल पाना सबके वश की बात नहीं होती। प्रायः देखने में आता है कि अल्पज्ञानी, अल्पधनी या अल्पबली ही अधीर होते हैं। जो वास्तव में ज्ञानी, धनी या बली होते हैं वे अपना बखान नहीं करते, आत्म-प्रशंसा से दूर रहते हैं। छोटी नदी तनिक-सा जल बढ़ने पर

उमड़कर बहने लगती है, समुद्र में कभी बाढ़ नहीं आती। वृक्ष और बादल भी वृद्धि होने पर नीचे ही झुकते हैं। अल्पज्ञानी ही अधिक बोलते हैं। योग्य लोग समय पर अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं।

3. **लोकोक्ति**- "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी"

पल्लवन- पर्याप्त सामग्री के अभाव में अपेक्षित कार्य नहीं हो सकता है। अत: न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। अर्थात जब पूरे मन तथा शक्ति से कार्य ही नहीं किया जाएगा तो कार्य भी पूरा नहीं होगा। इस तरह जब समय को टाला जाता है तो कोई भी काम नहीं होता। कार्य करने के लिए अपने काम में मन लगाना चाहिए। जब तक अपने काम को निष्ठापूर्वक नहीं किया जाता, तब तक काम अच्छा नहीं होता है। किसी कार्य को पूरा करने के लिए संबंधित पर्याप्त सामग्री का होना आवश्यक है, और जब तक सामग्री अर्थात निष्ठा का अभाव होगा, काम पूरा नहीं हो सकता।

4. **लोकोक्ति**- "जहां सुमति तहं संपति नाना।"

पल्लवन- जब मनुष्य में सुमति अर्थात सद्बुद्धि होती है तो वह अच्छे मार्ग तथा धर्म का अनुसरण करता है। सद्बुद्धि के प्रभाव से मनुष्य के वैभव एवं सुख-संपत्ति की वृद्धि होती है। इसी प्रकार जब कुमति से व्यक्ति अंधा होता है तो उसके दुष्प्रभाव में वह अधर्म के मार्ग पर चलने लगता है और इस प्रयास में सर्वस्व गंवा देता है। सर्वत्र कलह एवं झगड़ों में वृद्धि होती है। सुमति से सब कार्य बन जाते हैं और मनुष्य वास्तविक शांति को प्राप्त कर लेता है। सुमति मनुष्य को धर्म तथा ज्ञान की ओर ले जाती है। यदि मनुष्य कुमति से चलता है तो विपत्तियां बढ़ जाती हैं और मनुष्य को निराशा के साथ विफलताओं का सामना भी करना पड़ता है।

5. **लोकोक्ति**– "जो गरजते हैं वो बरसते नहीं।"

पल्लवन- वस्तु के रूप पर मनुष्य को मोहित नहीं होना चाहिए। रूप की अपेक्षा गुण को अधिक महत्व देना चाहिए। इसी प्रकार बरसने वाले बादल गरजते नहीं, वे तो बिना गरजे ही जल की वर्षा कर देते हैं। जलयुक्त बादल शब्दहीन होते हैं। इसी प्रकार शीलयुक्त गुण-संपन्न व्यक्ति अहंकार से हीन होते हैं। नम्रता ही उनके चरित्र का प्रमुख गुण होता है। करनी अच्छे गुणों की द्योतक है। करने वाले कहते नहीं, कहने वाले करते नहीं।

6. **लोकोक्ति**- "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।"

पल्लवन- सुजान अर्थात सुज्ञानी होने के लिए प्रतिभा का अपना महत्व तो है ही, प्रतिभा के अलावा ज्ञान का एक और विकल्प है, और वह है अभ्यास, निरंतर अभ्यास। प्रतिभा ज्ञान को प्राप्त करने की आधारभूत एवं प्रथम शर्त है। उत्कृष्ट प्रतिभा बहुत कम समय में सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त कर लेती है। आदि गुरु शंकराचार्य, विवेकानंद आदि ऐसी जन्मजात प्रतिभाएं थीं जिन्होंने बहुत कम आयु में न केवल अपनी परंपरा के उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कर लिया बल्कि ऐसे अद्भुत और नये ज्ञान का सृजन किया कि उनकी विद्वता के सम्मुख विश्व नत-मस्तक हुआ।

किंतु यदि किसी में जन्मजात प्रतिभा कम है तो भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रतिभा के बाद ज्ञान का दूसरा आधार अभ्यास है। यदि व्यक्ति कम प्रतिभाशाली है किंतु खूब अभ्यास करता है, तो वह भी ज्ञानी बन सकता है। अभ्यास की बारंबारता से स्मृति और समझ की रेखाएं घनी होती हैं, समझ का बहुत-सा कार्य आदत में बदल जाता है, बुद्धि को अधिक प्रयोग में लेने से उसमें पैनापन बढ़ता है। मानव बुद्धि की सामर्थ्य बहुत अधिक है, हम उसका बहुत कम उपयोग कर पाते हैं। अत: यदि हम अभ्यास की आवृति को बढ़ा देते हैं तो प्रतिभा का अधिकाधिक उपयोग कर सकेंगे।

7. **लोकोक्ति**- "दूर के ढोल सुहावने होते हैं।"

पल्लवन-दूर के ढोल सुहावने होते हैं। इस लोकोक्ति का अर्थ यह है कि दूर से हमें वस्तु अत्यंत प्रिय लगती है। जिस प्रकार कहीं दूर बजते हुए ढोल की आवाज सुनने पर अत्यंत मधुर लगती है, उस ढोल की मधुरता में कई नवयुवक या युवतियां अपने वैवाहिक जीवन की मादक कल्पना करने लगते हैं, कि उनका वह संसार कितना सुखमय होगा। दूर से बजता हुआ यही ढोल जब पास बजने लगता है तो उसकी आवाज अत्यंत कटु और कर्कश लगने लगती है। यह ढोल जैसे ही घर में बजने लगेगा तो उसका कोलाहल और बढ़ जाएगा। अर्थात वैवाहिक जीवन के यथार्थ में आते ही व्यक्ति को उस विवाहरूपी ढोल की यथार्थता एवं कर्कशता का अनुभव होने लगता है।

सच ही कहा है कि यर्थात जगत और काल्पनिक जगत में बहुत अंतर होता है, यथार्थ की कठोरता का अनुभव व्यक्ति के लिए सुखद नहीं होता। कहा भी गया है कि "हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती", ठीक उसी प्रकार दूर के ढोल सुहावने होते हैं, क्योंकि उसमें कल्पना का रोमांचकारी रंगीन संसार होता है।

8. **लोकोक्ति**- "निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।"

पल्लवन- व्यक्ति सामान्यत: अपने आलोचक से दूर भागता है, वह केवल उसकी उपेक्षा ही नहीं करता, बल्कि प्रत्यालोचना भी करने लगता है और इस प्रकार अपने आलोचक का मुंह बंद करने की कोशिश करता है। लेकिन कबीर ने व्यक्ति के विकास में आलोचक की भूमिका को बहुत ऊंचा स्थान दिया है।

हमें अपने आलोचक को इतना निकट रखना चाहिए कि वह दिन-रात, उठते-बैठते, खाते-पीते हमारे संपर्क में रहे तथा हमारी कमियां बताता रहे। हम आलोचक को इतने निकट, कि अपने आंगन में ही रखें और आंगन में उसको कोई कष्ट न हो इसके लिए उसकी कुटिया भी हम बना दें। अर्थात एक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने आलोचक के निरंतर संपर्क में रहे, उससे संवाद बनाए रखे ताकि उससे हमें अपनी कमजोरियों की जानकारी मिलती रहे और हम निरंतर अपना दोष-निवारण करते रहकर विकास-पथ पर अग्रसर हो सकें।

व्यक्ति को अपने आप अपनी कमजोरियों का ज्ञान होना कठिन है और बिना कमजोरियों को दूर किए वह विकास नहीं कर सकता, इसलिए विकास की कुंजी

आलोचक के हाथ में है। दरअसल, सीखने का भाव, जिज्ञासा का भाव हमें आलोचक के समीप ले जाता है और पूर्णता का भाव दंभ पैदा करके आलोचक से परे ले जाता है। ज्ञानी व्यक्ति इसीलिए आलोचक को सम्मान देता है, उसकी आलोचना को गंभीरता से सुनता है तथा उसके अनुसार अपने में सुधार करता है। इसलिए आलोचक से प्राप्त होने वाले लाभ के बारे में कबीर ने साखी की अगली पंक्ति में कहा है-

"बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।"

अर्थात हमारे स्वभाव में बिना अपनी ओर से कुछ किए निर्मल-सी स्वच्छता प्राप्त होती है।

4.3.3 टिप्पणी

संक्षिप्तीकरण, पत्र-लेखन तथा प्रारूपण के समान ही टिप्पण भी कार्यालयों के कामकाज की पारस्परिक प्रणाली की महत्वपूर्ण कड़ी है। टिप्पण शब्द भी ऊपर के तीनों पारिभाषिक शब्दों की तरह अंग्रेजी से ही लिया गया है। यह शब्द Noting के अर्थ में चलता है, जिसका अर्थ है–टिप्पणी या संक्षिप्त राय देना। कार्यालयों में समय पर प्राप्त होने वाले पत्रों पर आदि से अंत तक कार्यवाही करते हुए विभिन्न स्तरों के अधिकारी, प्रधान अधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय दे दिए जाने तक जो 'नोट' या अभ्युक्तियां (Remarks) लिखते हैं, उन्हीं को टिप्पण कहा जाता है।

- **अच्छी टिप्पणी की विशेषताएं**

1. संक्षिप्तता
2. सुस्पष्टता एवं सरलता
3. विषयानुरूपता
4. तर्कयुक्तता तथा तथ्यात्मकता
5. क्रमबद्धता या शृंखलाबद्धता
6. नियमानुकूलता
7. प्रामाणिकता
8. निष्पक्षता
9. समाधानपरकता
10. पूर्णता या स्पष्टता

- **टिप्पणी के कुछ आवश्यक नियम**

1. पत्र पर निर्धारित स्थान (प्रायः बाईं ओर) पर ही टिप्पणी लिखी जानी चाहिए।
2. पत्र में विवेच्य बिंदुओं को जिस क्रम से प्रस्तुत किया गया हो, उसी क्रम में उन बिंदुओं पर टिप्पणी देनी चाहिए।

3. टिप्पणी अन्य पुरुष में ही प्राय: लिखी जाती है।

4. टिप्पणी लिखने से पूर्व संदर्भित पत्र की क्रम संख्या तथा संदर्भ संख्या आदि का अंकन अवश्य होना चाहिए।

5. टिप्पणी लेखक को तटस्थ रहकर नियमानुकूल टिप्पणी देनी चाहिए।

6. अनुच्छेदों को संख्याबद्ध करके क्रम से लिखना चाहिए।

7. विवेच्य विषय के पूरे हवाले देते हुए टिप्पणी लिखनी चाहिए।

8. टिप्पणी पूर्ण अध्ययन और वास्तविकता की पूरी छानबीन करके लिखी जानी चाहिए।

9. टिप्पणी लिखने के बाद टिप्पणकार को बाईं ओर अपने लघु हस्ताक्षर (नाम के आद्यक्षर (INITIALS) करने चाहिए तथा तारीख भी डालनी चाहिए।

10. जिन नियमों, उपनियमों के आधार पर टिप्पणी लिखनी हो, हो सके तो उनका पूरा या उनके वांछित अंश का उद्धरण देना चाहिए।

11. अंत में, संदर्भित पत्र को संबंधित फाइल और टिप्पण के स्थान पर चिह्न (Flag) लगाकर मुख्य अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए।

• टिप्पणी के प्रकार

टिप्पणी मुख्यत: छह प्रकार की होती है–

(1) सामान्य टिप्पणी, (2) सूक्ष्म टिप्पणी, (3) संपूर्ण टिप्पणी, (4) विभागीय टिप्पणी, (5) अनौपचारिक टिप्पणी, (6) नित्यक्रमिक टिप्पणी।

1. **सामान्य टिप्पणी**- कार्यालय में ऐसे बहुत से पत्र आते हैं जिनका उत्तर साधारण-सा होता है। इनके लिए पिछले इतिहास आदि का संकेत करने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे पत्र नई कार्यवाही का प्रारंभ करते हैं। उन पर की गई टिप्पणी सामान्य या संक्षिप्त टिप्पणी कहलाती है।

2. **सूक्ष्म टिप्पणी**– कार्यालय में प्राप्त अनेक पत्र संबंधित अधिकारियों के देखने के पश्चात फाइल के ऊपरी भाग पर नत्थी कर दिए जाते हैं। ऐसे पत्र शाखाधिकारी, उपसचिव आदि को भेजे जाते हैं। वे उस पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखते हैं। सूक्ष्म टिप्पणी पत्र के बाईं ओर लिखी जाती है। ऐसी टिप्पणियां बहुत छोटी होती हैं, इसीलिए इन्हें सूक्ष्म टिप्पणी कहते हैं। इनको 'टीप' भी कह दिया जाता है। मंत्री और उच्चाधिकारी इन्हीं का प्रयोग करते हैं।

3. **संपूर्ण टिप्पणी**– कुछ पत्रों के विषय विवादाग्रस्त होते हैं। ऐसे पत्रों पर टिप्पणी देना सरल नहीं होता है। उनके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है, जिसके लिए एक लंबी प्रक्रिया अपनाई जाती है। पहले पुरानी फाइलों में से उनका पूर्ण विवरण देखना पड़ता है, फिर उससे संबंधित नियमों, अधिनियमों, कुछ समय पूर्व लिखे निर्णयों आदि का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ता है। इसके बाद टिप्पणी में विषय का पूर्ण इतिहास संक्षेप में अंकित किया जाता है। पत्र से संबंधित समस्या का विवरण देने के पश्चात विभिन्न तर्कों एवं तथ्यों से युक्त कुछ सुझाव भी दिए जाते हैं। ऐसी

टिप्पणियों को संपूर्ण टिप्पणी कहा जाता है। ये लिपिकों द्वारा तैयार की जाती है। तत्पश्चात आदेश के लिए उच्चाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं।

4. **विभागीय टिप्पणी**– कुछ पत्रों में ऐसे मुद्दे भी होते हैं जिन पर कोई एक अनुभाग स्वयं टिप्पणी नहीं लिख सकता। उनके लिए भिन्न-भिन्न विभागों से अलग-अलग आदेश प्राप्त किए जाते हैं। टिप्पणीकार प्रत्येक मुद्दे पर अलग-अलग टिप्पणी तैयार करके उन पर आदेश प्राप्त करता है। ऐसी टिप्पणियों को अनुभागीय अथवा विभागीय टिप्पणी कहते हैं।

5. **अनौपचारिक टिप्पणी**– जिन टिप्पणियों में संपूर्ण नियमों का पालन किया जाता है, उन्हें औपचारिक टिप्पणी कहा जाता है तथा जिन टिप्पणियों में नियमों के पालन का बंधन नहीं होता उन्हें अनौपचारिक टिप्पणी कहते हैं। प्राय: अनौपचारिक टिप्पणी एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय तथा एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय को भेजी जाती है। ये प्राय: किसी पत्र की जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजी जाती हैं। ऐसी टिप्पणियों के संबंध में प्राप्त होने वाले उत्तर भी अनौपचारिक पत्र कहलाते हैं।

6. **नित्यक्रमिक टिप्पणी**– कार्यालय में छोटी-छोटी बातों से संबंधित तैयार की जाने वाली टिप्पणियां नित्यक्रमिक टिप्पणी कहलाती हैं। ऐसी टिप्पणियां अभिलेख के लिए नहीं रखी जाती।

- **टिप्पणी और संक्षेपण में अंतर**

1. संक्षेपण में अवतरण के कथन को ज्यों का त्यों प्रामाणिक और सत्य मानकर उसे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना होगा, जबकि टिप्पण लिखते समय टिप्पणीकार को तथ्यात्मकता तथा नियमानुकूलता आदि की दृष्टि से उसकी समीक्षा करनी होती है।

2. संक्षेपण में संक्षेपणकार अपनी ओर से कुछ भी जोड़ नहीं सकता। दिए गए वक्तव्य पर ही उसे अपना कौशल दिखाना है, जबकि टिप्पणी लेखक यदि आवश्यक समझता है, तो संबंधित नियमों, उपनियमों आदि का भी उल्लेख कर सकता है।

3. टिप्पणीकार पत्र-लेखक के वक्तव्य को संक्षेपणकार की तरह अंतिम सत्य नहीं मानता। उसकी भूमिका निर्णायक की भी होती है।

4. संक्षेपणकार की भूमिका तटस्थता और निस्संगतापूर्ण होती है, जबकि टिप्पणीकार संदर्भित पत्र पर की गई कार्यवाही का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है।

5. संक्षेपण में लेखक उदाहरण और दृष्टांत आदि नहीं दे सकता, जबकि टिप्पणकार मिलते-जुलते अन्य मामलों का हवाला देकर अपने टिप्पण की प्रामाणिकता सिद्ध कर सकता है।

6. संक्षेपण हमेशा मूल से छोटा (1/3) होना चाहिए, जबकि टिप्पणी में ऐसी कोई सीमा नहीं होती। कभी-कभी टिप्पणी मूल से भी बड़ी हो जाती है।

- **कार्यालय-टिप्पणी में बहुलता से प्रयुक्त होने वाले कुछ महत्वपूर्ण वाक्यांश**

1. मुझे आपके पत्र की पावती (Acknowledgement) भेजने का निर्देश हुआ है।

2. मुझे यह निर्देश दिया गया है कि मैं आपको सूचित करूं/आपसे अनुरोध करूं.....

3. आपके दिनांक ..... के पत्रांक ..... के संदर्भ में।

4. आपका ध्यान उद्योग-मंत्रालय के औद्योगिक विकास विभाग के दिनांक ..... के इसी संख्या के कार्यालय ज्ञापन की ओर आकर्षित किया जाता है।

5. कृपया ..... के संबंध में दिनांक ..... के अपने पत्रांक ..... की ओर ध्यान दें।

6. प्रतिलिपि, सूचना एवं आवश्यक कार्यवाही के लिए निम्नलिखित को भेजी जा रही है।

7. इस संबंध में मुझे कहना है, आपको सूचना देनी है कि .....

8. आपने जिस ज्ञापन का उल्लेख किया है, उसके संबंध में अनुरोध है कि.....

9. निम्न कागज-पत्रों की एक-एक प्रतिलिपि सूचना निर्देशन/आवश्यक कार्यवाही शीघ्र अनुपालन के लिए भेजी जा रही है।

10. आपसे इस मामले की वर्तमान स्थिति की सूचना देने का अनुरोध है।

11. कृपया शीघ्र उत्तर देने का कष्ट करें।

12. इसे मूल रूप में ही इस टिप्पणी के साथ लौटाया जाता है कि अपेक्षित सूचना इस कार्यालय के दिनांक ..... के पत्रांक ..... के द्वारा पहले ही भेजी जा चुकी है।

13. इस प्रस्ताव पर विचार करने के पूर्व हम उन कागजात को देखना चाहते हैं, जिनका इस कार्यवाही से संबंध है।

14. पत्र मिलने की सूचना दे दी गई है।

15. यात्रा-भत्ता संबंधी बिल देख लिए गए हैं। वे सब यथातथ्य हैं। भुगतान की स्वीकृति दे दी जाए।

16. इसकी अनुमति देना जनहित में न होगा।

17. इस व्यय के लिए इस वित्तीय-वर्ष के बजट में व्यवस्था है।

18. कार्यालय की टिप्पणी नियमानुकूल है, आदेश जारी कर दिया जाए।

19. श्री ..... को सूचित कर दिया जाए कि उनके आवेदन पर सक्रिय रूप से विचार हो रहा है। निर्णय शीघ्र ही भेज दिया जाएगा।

20. प्रार्थना-पत्र उचित माध्यम से नहीं आया है, इस पर विचार नहीं हो सकता।

21. प्रारूप पर स्वीकृति दी जा रही है।

22. तुरंत अनुस्मारक (Reminder) भेजा जाए।

23. मामला अभी मंत्रालय के विचाराधीन है।

24. केंद्रीय कार्यालय से परामर्श किया जाए।

25. अपेक्षित जानकारी आवेदक से मंगाई जा रही है, मिलते ही भेज दी जाएगी।

26. उत्तर का प्रारूप अनुमोदन के लिए प्रस्तुत है।

27. विचाराधीन पत्र की प्राप्ति की सूचना अभी नहीं भेजी गई है।

28. हम स्वीकृति देने में अक्षम हैं।

29. रिकॉर्ड कर दिया जाए।

30. प्रस्ताव सर्वथा नियमानुकूल है।

31. अंतिम निर्णय किया जा चुका है।

32. इस पर कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

33. कृपया संबंधित कागज-पत्र शीघ्र लौटाएं।

34. आवश्यक कार्यवाही हेतु अग्रेषित।

35. आगे कोई कार्यवाही अपेक्षित नहीं है।

36. संबंधित आदेश चिह्नित कर दिए गए हैं।

37. फाइल कर दिया गया है।

38. कृपया देख लें।

39. देख लिया, सही है, धन्यवाद।

40. आदेश के लिए प्रस्तुत है।

विस्तृत टिप्पणियों के उदाहरण

1. इस पर हमारी ओर से कोई कार्यवाही किए जाने की जरूरत नहीं दिखती। यदि अनुमति हो तो कागजों को रिकार्ड कर दिया जाए।

2. प्रस्ताव पर विचार करने से पूर्व हम मंत्रालय से उन कागजों को साथ लगा देने का अनुरोध करते हैं, जिनमें ये रियायतें स्वीकृत की गई थीं।

3. ..... मंत्रालय ने जो कागज मांगे हैं, वे इस फाइल के साथ लगा दिए गए हैं।

4. मूल रूप में ही इस टिप्पणी के साथ लौटाया जाता है कि अपेक्षित सूचना पहले ही इस कार्यालय के दिनांक ..... पत्र सं. ..... द्वारा भेजी जा चुकी है।

5. इस विषय से संबंधित कागज-पत्र ..... अनुभाग को स्थानांतरित कर दिए गए हैं। अनुभाग कृपया इस बारे में आगे की कार्यवाही के लिए देख ले।

6. आवेदन पत्र ठीक ही लगता है। मंजूरी के मसौदे के अनुसार आवश्यक अनुमति देने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

7. निदेशक के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य दिखाई नहीं पड़ता है।

8. समय पर रिपोर्ट पेश करने की व्यवस्था की जा रही है।

टिप्पणी के उदाहरण

उदाहरण 1

प्रेषक-

अशोक सिंह

शोधार्थी

हिन्दी- विभाग

जयपुर, राजस्थान

संदर्भ -रिस/हि./2334/2014-15

प्रति,

कुल सचिव

राज.विश्वविद्यालय; जयपुर।

विषय : शोध-कार्य की अवधि बढ़ाने के संबंध में।

मान्यवर,

निवेदन है कि मेरा शोध विषय दिनांक 28.3.2014 को विश्वविद्यालय की रिसर्च डिग्री कमेटी के द्वारा स्वीकृत किया गया था। मेरी लंबी बीमारी के कारण निर्धारित अवधि में मेरा शोध कार्य पूरा नहीं हो सका। दिनांक 25.10.2015 को मेरे कार्य की निर्धारित अवधि समाप्त हो रही है। आपसे प्रार्थना है कि इस कार्य को पूर्ण करने के लिए मुझे एक वर्ष का अतिरिक्त समय और दिया जाए।

भवदीय

ह. अशोक सिंह

दिनांक 25.04.2015

संलग्नक:

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया का सौ रुपए का ड्राफ्ट।

शोध निदेशक की संस्तुति

यह प्रार्थना पत्र इस संस्तुति के साथ अग्रेषित किया जाता है कि शोधार्थी ने बड़ी लगन और तत्परता से लगभग तीन चौथाई कार्य पूर्ण कर लिया है। रुग्णता के कारण उसके कार्य में व्यवधान आया है। अत: शोधार्थी को एक वर्ष का अतिरिक्त कार्यकाल और प्रदान करने की कृपा की जाए।

ह./

दिनांक 05.05.2015

संबंधित विभागीय अधिकारी की टिप्पणी

श्रीमान,

शोधार्थी का प्रार्थना पत्र नियमानुकूल है। आवेदन के साथ शोध अवधि बढ़ाने के लिए निर्धारित शुल्क (सौ रुपए) का बैंक-ड्राफ्ट भी संलग्न है।

ह./

कार्यभारी (प्रभारी)

शोध-विभाग

राज. विश्वविद्यालय

कुल सचिव की अंतिम टिप्पणी

शोधार्थी के इस आवेदन को आगामी शोध-समिति की बैठक में विचारार्थ रखा जाए।

ह./

दिनांक 15.05.2015

कुल सचिव

राज. विश्वविद्यालय

उदाहरण 2

विषय- जिला परिषदों द्वारा लेखा परीक्षा शुल्क से मुक्त किए जाने की प्रार्थना।

महोदय,

उपर्युक्त विषय में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि संबंधित मामला प्रशासन वित्त (लेखा परीक्षा) अनुभाग के विचाराधीन है। लिए गए निर्णय से यथासमय अवगत कराया जाएगा।

भवदीय

गोपी शर्मा

महासचिव

टिप्पणी

अतिरिक्त मुख्य अधिकारी

उपसचिव उ. प्र. शासन, लखनऊ का पत्र अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। लेखा परीक्षा शुल्क से मुक्ति पाने का प्रश्न शासन के वित्त (लेखा परीक्षा) अनुभाग के विचाराधीन है, निर्णय की प्रतीक्षा की जाए, सूचनार्थ।

राम सिंह

दिनांक 20/06/2015

उदाहरण 3

सेवा में,

श्रीमान कार्यकारी अधिकारी
नगर पालिका,
चौमू।

मान्य महोदय,

निवेदन है कि जाड़े का मौसम आरंभ हो गया है, किंतु इस वर्ष मुझे अभी तक नगरपालिका की ओर से गर्म कोट नहीं मिला है। आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि मुझे यथाशीघ्र गर्म कोट दिलाने की कृपा की जाए। इसके लिए मैं आपका अत्यंत आभारी होऊंगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक:
सेवा
सफाई कर्मचारी
नगर पालिका चौमू

टिप्पणी

इस वर्ष नगरपालिका के किसी भी सफाई कर्मचारी को गर्म कोट नहीं दिया गया है, क्योंकि अभी तक शासन से उक्त मद के लिए बजट की स्वीकृति नहीं आई है। इस संबंध में शासन को लिखा जा चुका है। स्वीकृति की प्रत्याशा में गर्म कोट दिया जा सकता है।
ह. कार्यालय अधीक्षक
04.10.2015

उदाहरण 4

सेवा में,

प्राचार्य महोदय
मेरठ कॉलेज,
मेरठ।

आदरणीय प्राचार्य महोदय,

सेवा में सविनय निवदेन है कि आज प्रात: काल 10 बजे जब मैं कॉलेज आ रहा था, अकस्मात मुझ पर पांच-छह लड़कों ने आक्रमण कर दिया। इनमें से दो लड़कों के हाथों में छोटे-छोटे डंडे भी थे। मैं इन्हें पहचानता हूं। ये हमारे कॉलेज के बी.ए. (प्र.व.) के छात्र हैं। इनमें से दो के नाम हैं- बलभद्र प्रसाद शर्मा तथा शिवेंद्र मोहन। इन्होंने मुझे यह भी धमकी दी है कि यदि मैं इनकी रिपोर्ट करूंगा तो मुझे इसके परिणाम भुगतने होंगे। आपसे प्रार्थना है कि उक्त छात्रों को उचित दंड दिया जाए, जिससे भविष्य में वे ऐसी हरकतें न करें।

दिनांक: 12.04.2015

आपका आज्ञाकारी शिष्य
सुरेशचंद्र
बी.ए. (द्वि. व.)

पृष्ठांकन

मुख्य अनुशासक,

इस संदर्भ में आवश्यक जांच-पड़ताल करके मुझसे मिलने का कष्ट कीजिए।

ह.....

प्राचार्य 12.04.2015

टिप्पणी

आपके द्वारा पृष्ठांकित, श्री सुरेशचंद्र के दिनांक 12.04.2015 के प्रार्थना-पत्र के संदर्भ में मैंने बलभद्र प्रसाद शर्मा, शिवेंद्र मोहन तथा अन्य छात्रों से पूछताछ की जिससे ज्ञात हुआ कि दिनांक 12.04.2015 को उक्त दोनों छात्रों ने सुरेशचंद्र की पिटाई की। इन दोनों ने लिखित रूप में क्षमायाचना कर ली है, जिसकी प्रति संलग्न है। प्रथम अपराध होने के कारण इस बार इन्हें क्षमा करते हुए भविष्य के लिए कड़ी चेतावनी दी जाए।

मुख्य अनुशासक
16.04.2015

उदाहरण 5

कार्यालय जिला नियोजन अधिकारी, अलवर

पत्रांक 944/विविध/जी.सी./2014-15 **दिनांक 20 अगस्त, 2015**

प्रेषक:

जिला नियोजन अधिकारी
अलवर।

सेवा में,

सचिव
जिला परिषद
अलवर।

विषय: ग्राम-समूह बानसूर की पेयजल योजना व स्वच्छता-कार्यक्रम।

महोदय,

अधिशासी अभियंता, स्वायत्त शासन अभियंत्रण विभाग (राजस्थान) जयपुर ने सूचित किया है कि आदर्श ग्राम के लिए चुने गए इस जनपद के बानसूर देवमल विकास खंड में स्थित बानसूर पेयजल योजना का प्राकलन तैयार हो चुका है, जिसकी अनुमानित लागत 2 लाख 60 हजार रुपए है।

भवदीय
जिला नियोजन अधिकारी, अलवर

टिप्पणी

मुख्याधिकारी

जिला नियोजन अधिकारी, अलवर का दिनांक 20 अगस्त, 2015 का पत्रांक 944/विविध /जी.सी./2009-2010 अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। इस पत्र के अनुसार बानसूर विकास क्षेत्र में स्थित ग्राम बानसूर पेयजल योजना के 2.60 लाख रुपए के प्राकलन का प्रस्ताव परामर्शदात्री समिति की 30 अगस्त, 2011 की बैठक में पारित होना है। अत: परामर्शदात्री समिति की बैठक में उक्त प्रस्ताव रखने की अनुमति प्रदान की जाए, जिससे प्रस्ताव पारित करा कर शासन की आगामी कार्रवाई हेतु अग्रेषित किया जा सके।

मोहन सिंह

24.8.2015

उदाहरण-6

सेवा में,

प्राचार्य महोदया,

कनोडिया गर्ल्स महाविद्यालय, मेरठ

महोदया,

निवेदन है कि विगत रात्रि से ज्वर तथा शीत से आक्रांत होने के कारण मैं महाविद्यालय आने में असमर्थ हूं। अत: मुझे दिनांक 8 से 11 मार्च, 2015 तक का अवकाश प्रदान करने की कृपा करें।

सधन्यवाद।

भवदीया

प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग

दिनांक: 8.3.2015

टिप्पणी

..... अपने देय संपूर्ण आकस्मिक अवकाश का उपभोग कर चुकी हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें दिनांक 8 से 11 मार्च, 2015 तक का उपार्जित अवकाश दिया जा सकता है, जो देय है।

आदेशार्थ

लिपिक

दिनांक 8.3.2015

4.4 सारांश

आज के वैज्ञानिक युग में संचार-माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं। लिपि के विकास से पूर्व चित्रों अथवा विभिन्न संकेतों के माध्यम से सूचना-संप्रेषण

का काम किया जाता था। पत्र-लेखन में क्षमता प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति की कामना होती है। पत्र को हम विश्वबंधुत्व का एक प्रबल माध्यम भी कह सकते हैं। दुनिया के अनेक साधारण और असाधारण व्यक्तियों ने पत्रों के द्वारा मित्र बनाकर जीवन में महती सफलता प्राप्त की है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इन पत्रों से जुड़ा हुआ है। किसी भी महापुरुष, नेता, साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों के द्वारा हम उसकी चिंतनकला, विचारधारा, जीवन दर्शन, देश-विदेश नीति तथा अन्य बहुत-सी उपयोगी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो लिखने वाले के हाथ से छूटकर किसी अन्य के हाथ में जाता है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि बोलते समय एक बार सोचो और लिखते समय तीन बार। भावावेश में कभी मत लिखो। क्रोध, द्वेष आदि के आवेश में लिखे गए पत्रों के लिए बड़े-बड़े दिग्गजों को क्षमा-याचना करते हुए देखा गया है। लिख चुकने के बाद संपूर्ण पत्र को एक बार सावधानी से पढ़ लेना चाहिए, जिससे शीघ्रता में लिखी गई वर्तनी आदि की अशुद्धियों को ठीक किया जा सके तथा फालतू बातों को पत्र से काट दिया जाए। एक सफल पत्र तैयार करने के लिए, उसे काट-छांट आदि से बचाने के लिए समझदार लोग पत्र की कच्ची रूपरेखा पहले तैयार कर लेते हैं। प्राप्तकर्ता का पता लिफाफे आदि पर सावधानीपूर्वक लिखा जाना चाहिए, जिसमें जनपद, प्रांत तथा पिन कोड आदि का उल्लेख पत्र को उसके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए अत्यंत अनिवार्य है।

कार्यालयी पत्रों में सरकारी पत्रों का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इन्हें आधिकारिक एवं नियमित पत्र भी कहते हैं। सरकारी पत्रों का प्रयोग एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार को, उसके अधीन राज्य सरकार को, निर्वाचन आयोग को, संघ लोक सेवा आयोग, योजना आयोग, अर्ध-सरकारी आयोगों एवं निकायों को, विभिन्न अर्ध-सरकारी/गैर सरकारी संघों, संरचनाओं, प्रांतीय सरकारों के प्रमुख मामलों में भारत सरकार को तथा अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालयों, आयोगों एवं निगमों, विभागीय अध्यक्षों एवं अधिकारियों को, सरकार से अलग सार्वजनिक प्रतिष्ठानों एवं स्वतंत्र कार्यालयों आदि के लिए किया जाता है।

पत्र लिखना अपने आप में एक कला है। यह प्राचीन समय से चली आ रही है, व्यावसायिक जगत में मौखिक शब्दों की अपेक्षा लिखित शब्दों का महत्व अधिक है, क्योंकि व्यावसायिक क्षेत्रों में पत्र अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत: इस क्षेत्र में भी पत्र लिखने की अपनी ही एक कला होती है, ऐसे पत्र बड़ी सूझ-बूझ के साथ लिखे जाते हैं। इस सूझ-बूझ के बिना हम अपनी समस्या और कार्य सही रूप में नहीं करवा सकते। व्यावसायिक क्षेत्र में मूल्य-पत्र, विज्ञापन-पत्र, क्रयादेश-पत्र, विक्रय-पत्र, अनुरोध-पत्र एवं निविदा पत्र आदि आते हैं। वर्तमान समय में व्यावसायिक क्षेत्र में पत्रों का अपना अलग ही महत्व है।

आधुनिक समाज में सबके लिए एक ऐसे मानसिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसमें कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए लेखन संबंधी कामकाज को त्वरित ढंग से पूरा किया जा सकता हो। संक्षेपण की इस कला और कुशलता से छात्रों के पठन पाठन तथा लेखन में भी सरलता, स्पष्टता, स्वच्छता और प्रभावकारिता जैसी विशेषताएं उत्पन्न होती हैं। उसमें शब्द-संयम, भाव संयम और चिंतन संयम की क्षमता बढ़ती है। अत: हम कह सकते हैं कि संक्षेपण से हमारे श्रम और समय की बचत होती है।

पल्लवन को वृद्धिकरण, विषदीकरण, संवर्धन या भाव-विस्तार आदि भी कहते हैं। डॉ. राघव प्रकाश पल्लवन के संदर्भ में लिखते हैं, "पल्लवन में किसी संक्षिप्त गूढ़ विचार-भाव, सूक्ति को विस्तार से स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है। लेखकों द्वारा रची गई या समाज में परंपरा से चली आती हुई कुछ सूक्तियां ऐसी होती हैं कि सामान्य व्यक्ति उनके मूल आशय को अच्छी तरह समझ नहीं सकता। ऐसी स्थिति में हमें उस उक्ति को खोलकर उदाहरण देते हुए इस तरह से स्पष्ट करना चाहिए कि वह संक्षिप्त गूढ़ बात सभी को सहजता से बोधगम्य हो जाए।" अतः स्पष्ट है कि "लेखक के मूल लेख या वक्ता के कथन को विस्तार के साथ लिखने या अभिव्यक्त करने की क्रिया को पल्लवन या भाव विस्तार कहते हैं।"

संक्षिप्तीकरण, पत्र-लेखन तथा प्रारूपण के समान ही टिप्पण भी कार्यालयों के कामकाज की पारस्परिक प्रणाली की महत्वपूर्ण कड़ी है। टिप्पण शब्द भी ऊपर के तीनों पारिभाषिक शब्दों की तरह अंग्रेजी से ही लिया गया है। यह शब्द Noting के अर्थ में चलता है, जिसका अर्थ है–टिप्पणी या संक्षिप्त राय देना। कार्यालयों में समय पर प्राप्त होने वाले पत्रों पर आदि से अंत तक कार्यवाही करते हुए विभिन्न स्तरों के अधिकारी, प्रधान अधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय दे दिए जाने तक जो 'नोट' या अभ्युक्तियां (Remarks) लिखते हैं, उन्हीं को टिप्पण कहा जाता है।

4.5 मुख्य शब्दावली

- **संक्षेपण** : सार लेखन।
- **ज्ञापन** : बोधक, सूचक।
- **आक्रांत** : पीड़ित।
- **आकस्मिक** : अचानक।
- **अवकाश** : छुट्टी।
- **सिद्धहस्त** : काम में चतुर।
- **मितव्ययिता** : कम व्यय।
- **स्वयंमेव** : अपने आप।
- **व्यवधान** : बाधा, रुकावट।
- **अनुपालना** : ध्यान रखना।
- **पल्लवन** : वृद्धिकरण, भाव-विस्तार।
- **जिज्ञासा** : जानने की इच्छा।

4.6 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. व्यावहारिक या कार्यालयी हिन्दी का।
2. पत्र लेखन से।

3. (क) सही (ख) गलत।

4. संक्षेपण।

5. पल्लवन।

6. (क) सही (ख) गलत।

4.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्यालयी पत्र के विभिन्न रूपों का परिचय दीजिए।
2. पत्र लेखन की उपयोगिता बताइए।
3. संक्षेपण का अर्थ बताइए।
4. पल्लवन का महत्व स्पष्ट कीजिए।
5. टिप्पणी और संक्षेपण में अंतर बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पत्र-लेखन की अवधारणा स्पष्ट करते हुए पत्र-लेखन के गुण और विशेषताएं बताइए।
2. संक्षेपण का महत्व बताते हुए उसकी विधि और विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
3. टिप्पणी का अर्थ बताते हुए टिप्पणी के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
4. पल्लवन, संक्षेपण एवं टिप्पणी का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
5. पल्लवन एवं टिप्पणी की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

4.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. विनोद कुमार प्रसाद, *भाषा और प्रौद्योगिकी*, वाणी, नई दिल्ली।
2. प्रेमचंद पातंजलि, *व्यावसायिक हिन्दी*, वणी, नई दिल्ली।
3. प्रेमचंद पातंजलि, *आधुनिक विज्ञापन*, नई दिल्ली।
4. विनोद गोदरे, *प्रयोजनमूलक हिन्दी*, वाणी, नई दिल्ली।
5. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, *प्रयोजनमूलक हिन्दी*, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
6. दंगल झाल्टे, *प्रयोजनामूलक हिन्दी, सिद्धांत और प्रयोग*, वाणी, नई दिल्ली।
7. शिवनारायण चतुर्वेदी, *टिप्पणी प्रारूप*, वाणी, नई दिल्ली।
8. शिवनारायण चतुर्वेदी, *प्रालेखन प्रारूप*, वाणी, नई दिल्ली।
9. माणिक मृगेश, *राजभाषा हिन्दी*, वाणी, नई दिल्ली।

10. कैलाशचन्द्र भाटिया, *राजभाषा हिन्दी*, वाणी, नई दिल्ली।
11. महेशचन्द्र गुप्त, *प्रशासनिक हिन्दी, ऐतिहासिक संदर्भ*, वाणी नई दिल्ली।
12. रहमतुल्लाह, *व्यावसायिक हिन्दी*, वाणी, नई दिल्ली।
13. भोलनाथ तिवारी एवं विजय कुलश्रेष्ठ, *पत्र-व्यवहार निर्देशिका*, वाणी, नई दिल्ली।
14. भोलनाथ तिवारी, *प्रारूपण, टिप्पण और प्रूफ-पठन*, वाणी, नई दिल्ली।

5.1

5.3 पारिभाषिक शब्दावली : सामान्य परिचय

प्रयोजनमूलक हिन्दी के तीन प्रमुख तत्व हैं। पहला–पारिभाषिक शब्दावली, दूसरा–अनुवाद और तीसरा–भाषिक संरचना। भाषा–बोध और सम्प्रेषण की प्रक्रिया में इन तीनों तत्वों का विशेष महत्व है। किन्तु पारिभाषिक शब्दावली की उपयोगिता एक समान भाषा–व्यवस्था के लिए अपरिहार्य है। इसीलिए भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही भाषा वैज्ञानिकों, लेखकों ने संस्थानिक स्तर पर पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए कोशिश करना आरम्भ कर दिया था। स्वतंत्रता के पूर्व भी इस विषय पर विचार हुए थे। पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता के पीछे विभिन्न भाषाओं में होने वाले वैज्ञानिक आविष्कार, दार्शनिक अवधारणों और आधुनिक संकल्पनाओं आदि को अपनी भाषा में लाना था। जिसके लिए उपयुक्त शब्दावली की आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

धीरे–धीरे यह धारणा स्थिर हो गई कि पारिभाषिक शब्दावली के बिना कोई भाषा गहन, सूक्ष्म और विशिष्ट वैज्ञानिक, दार्शनिक, सामाजिक व सांस्कृतिक चिंतन के लिए समर्थ नहीं हो सकती। इसलिए यदि किसी भी भाषा को अपने समय की वैचारिक और वैज्ञानिक प्रक्रिया को चिंतन के स्तर पर अभिव्यक्त करना है तो उसे अपने पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करना होगा। यहां यह ध्यान रहे कि पारिभाषिक शब्दावली कोई स्थिर या ठहरी हुई प्रक्रिया न होकर सतत गतिशील, प्रवाहमान और विकसित होती हुई प्रक्रिया है। चूंकि ज्ञान और चिंतन की प्रक्रिया समय के साथ बदलती–बढ़ती रहती है, इसलिए पूर्ण अभिव्यक्ति की दृष्टि से भाषा की पारिभाषिक शब्दावली में विकास और वृद्धि होते रहना चाहिए। किसी भी भाषा में जब पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण बाधित हो जाता है, तब वह भाषा भी बहुत दिनों तक अपनी प्रासंगिकता को बनाए नहीं रख सकती।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाए तो भारत में पारिभाषिक शब्दावली का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल से ही भारत की पुरानी भाषाओं, संगीत, चिकित्सा, ज्योतिष, कृषि, मौसम शास्त्र, कर्मकांड, युद्धकला आदि विषयों के अपने विशिष्ट पारिभाषिक शब्द थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास के विशिष्ट काल–खंड जैसे वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल के साहित्य में भी पारिभाषिक शब्दों की एक पूरी व्यवस्था विद्यमान है।

हिन्दी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली की शुरुआती स्थिति के बारे में भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि "हिन्दी के द्विभाषिक पुराने कोशों (जैसे, 'खलिकबारी', 1675 की मिर्जा खां की 'लुगातए हिन्दी', औरंगजेब के समकालीन हांसवी की 'गुरायबुल लुगात', 1688 ई. की तजल्ली द्वारा संपादित 'अल्लाखुदाई' अथवा यूरोपीय विद्वानों द्वारा अठारहवीं सदी में बनाए गए बहुत से कोश, जिनमें 1704 ई. का तुरोनेसिस का, 1743 ई. का केटेलर का, तथा बाद

में फर्ग्युसन, किर्क पैट्रिक, हैरिस, गिलक्राइस्ट आदि के, मुख्य हैं) में पारिभाषिक शब्द काफी हैं, किन्तु लगता है कि इनके अलग अस्तित्व के प्रति लोग विशेष सजग नहीं थे। हिन्दी ही क्या, सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों के प्रति सजगता 1800 ई. के आस–पास शुरू हुई। 1797 ई. में कलकत्ता से प्रकाशित 'मुस्लिम कानून और लगान के पारिभाषिक शब्दों का कोश' अब तक ज्ञात इस प्रकार का प्रथम कोश है। उसके बाद 1811 ई. में रोबक ने नौविज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का तथा 1822 ई. में ब्राउन ने व्यावसायिक शब्दों का कोश प्रकाशित किया।"

इसके बाद भारतीय विद्वानों द्वारा बनाये गये कोशों में 1894 ई. में प्रकाशित 'श्रीधर भाषा कोश' तथा 1914 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी शब्दार्थ पारिजात' का विशेष महत्व है। बाद के दिनों में श्याम सुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल और रामचन्द्र वर्मा के प्रयासों से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से 1929 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी शब्दसागर' जो आज भी इस दिशा में उल्लेखनीय माना जाता है। अद्यतन जानकारी यह है कि करूणापति त्रिपाठी के संयोजकत्व में 'हिन्दी शब्दसागर' का जो नया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हुआ उसमें सम्मिलित शब्दों की संख्या लगभग दो लाख तक पहुंच गई है।

5.3.1 पारिभाषिक शब्दावली : अर्थ एवं परिभाषा

पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग ज्ञान के किसी भी क्षेत्र के लिए विशिष्ट किन्तु निश्चित अर्थ में किया जा सकता है। पारिभाषिक शब्द परिभाषित होते हैं। पारिभाषिक शब्दावली को समझने से पहले हमें शब्द के बारे में जान लेना चाहिए।

शब्द ध्वनियों के योग से बना सार्थक वर्ण–समुदाय होता है। या 'एक या एक से अधिक वर्णों से मिल कर बनी स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहा जाता है।' प्रयोग विषय अथवा प्रयोग क्षेत्र के आधार पर शब्द के तीन रूप प्रचलित हैं–

1. सामान्य शब्द,
2. अर्द्धपारिभाषिक शब्द
3. पारिभाषिक शब्द।

उन शब्दों को सामान्य शब्द कहा जाता है जो सामान्य बोलचाल में प्रयोग किये जाते हैं। इनका सम्बन्ध हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी से होता है। जैसे, गरम, ठण्डा, आना, जाना, लड़का, नदी, घर, पानी, कलम आदि। इन्हें अपारिभाषिक शब्द भी कहा जाता है। अर्द्धपारिभाषिक शब्द से अभिप्राय उन शब्दों से है जिनका प्रयोग सामान्य और पारिभाषिक दोनों अर्थों में होता है। स्थिति, विषय–वस्तु और सन्दर्भ के आधार पर इनका प्रयोग सामान्य और पारिभाषिक शब्द के अर्थ में होता है। जैसे– रस, क्रिया, माया, सृजन, विपदा आदि शब्दों का प्रयोग सामान्य और पारिभाषिक दोनों अर्थों में किया जाता है। इसी तरह उन शब्दों को पारिभाषिक शब्द कहा जाता है जिनका प्रयोग विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों और शास्त्रों, दर्शन–चिंतन आदि में किया जाता है। पारिभाषिक शब्द को 'तकनीकी' शब्द और पारिभाषिक शब्दावली को 'टेक्निकल टर्मिनालॉजी' कहा जाता है। प्रख्यात भाषा वैज्ञानिक डॉ. रघुवीर ने 'कम्प्रेहेन्सिव डिक्शनरी ऑफ इग्लिश हिन्दी' में इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि 'जिन शब्दों की सीमा बांध दी जाती है वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी

सीमा नहीं बांधी जाती वे साधारण शब्द होते हैं।' सामान्य शब्दों में कहा जाए तो 'सम्बद्ध विज्ञान या शास्त्र के प्रसंग में जिसकी परिभाषा दी जा सके उसे पारिभाषिक शब्द कहा जाता है', जैसे, ग्रेविटेशन, प्रतिजैविक, परजीवी आदि।

पारिभाषिक शब्द को अंग्रेजी में 'टेक्निकल टर्म' (Technical Term) कहा जाता है। सामान्य अर्थ में विभिन्न शास्त्रों और वैज्ञानिक विषयों में एक सुनिश्चित अर्थ अभिव्यक्त करने वाले और उसी मे संदर्भ परिभाषित किये जा सकने वाले शब्द 'पारिभाषिक शब्द' कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में ज्ञान की किसी विशेष शाखा से सम्बन्ध रखनेवाली विशिष्ट शब्दावली 'पारिभाषिक शब्दावली' कहलाती है। शब्दों की इसी निश्चित अथवा विशिष्ट प्रयुक्ति को डॉ. रघुवीर 'एक निश्चित सीमा में बांध देना' स्वीकारते हैं। उनके अनुसार "पारिभाषिक शब्द उसको कहते हैं जिसकी परिभाषा की गई हो, पारिभाषिक शब्द का अर्थ है जिसकी सीमाएं बांध दी गई हों। जिन शब्दों की सीमा बांध दी जाती हैं वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी सीमा नहीं बांधी जाती वे साधारण शब्द होते हैं।" डॉ. भोलानाथ तिवारी पारिभाषिक शब्द की परिभाषा देते हुए लिखते हैं– "पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जो सामान्य व्यवहार की भाषा के शब्द न होकर ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (जैसे रसायन, भौतिकी, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन, अलंकारशास्त्र, गणित, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि–इत्यादि) के होते हैं तथा विशिष्ट ज्ञान, विज्ञान या शास्त्र में जिनकी अर्थसीमा परिभाषित या निश्चित रहती है।" अर्थात् अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से अनिवार्यतः पारिभाषिक होने के कारण ही ये शब्द पारिभाषिक शब्द स्वीकारे जाते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली की महत्ता ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ती ही जा रही है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ–साथ दैनिक जीवन में नई–नई वस्तुएं, विचार, भावनाएं तथा धारणाओं का तेजी से प्रयोग हो रहा है। जिसको पारम्परिक भाषा और उसकी शब्दावली में व्यक्त करना कठिन होता जाता है। इसलिए ज्ञान–विशेष के किसी भी क्षेत्र में हो रहे विकास और परिवर्तन के कारण नई शब्दावली का निर्माण आवश्यक हो जाता है।

प्रख्यात भाषाविद् भोलानाथ तिवारी विचार विनिमय में स्पष्ट और अपेक्षित अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्दों की महत्ता को असंदिग्ध मानते हुए कहते हैं कि 'वास्तव में सूक्ष्म बौद्धिक चिन्तन एवं तकनीकी ज्ञान के विकास के साथ तकनीकी भाषा का विस्तार होता है। जिस भाषा में जितने अधिक पारिभाषिक शब्दों का रचाव–जमाव होगा वह भाषा आज उतनी ही सम्पन्न, समृद्ध कहलाएगी तथा बौद्धिक चिन्तन तथा समकालीन जीवन जगत के लिए उतनी ही अधिक उपयुक्त कही जाएगी। किसी भी भाषा में समुचित पारिभाषिक शब्दावली की विद्यमानता उस भाषाभाषी वर्ग के बौद्धिक उत्कर्ष एवं सम्पन्नता की परिचायक होती है और उसका अभाव बौद्धिक दरिद्रता का। सचमुच समर्थ राष्ट्र की भाषा में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण तथा विकास की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहनी चाहिए।' अतः यह स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्दावली के बिना कोई भाषा स्वयं को आधुनिक प्रगति के अनुकूल तथा समृद्ध नहीं बना सकती।

5.3.2 पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएं

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताओं का निर्धारण कर सकते हैं, जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

- पारिभाषिक शब्द का अर्थ स्पष्ट और निश्चित होता है।
- एक विषय में उनका एक ही अर्थ होता है। एक विषय में एक धारणा या वस्तु के लिए एक ही पारिभाषिक शब्द होता है।
- पारिभाषिक शब्द छोटा होना चाहिए जिससे कि उसके प्रयोग में सुविधा हो।
- पारिभाषिक शब्द मूल या रूढ़ होना चाहिये, व्याख्यात्मक नहीं। जैसे 'अहिंसा' पारिभाषिक शब्द है, इसके स्थान पर 'हिंसा नहीं करना' नहीं हो सकता क्योंकि यह पारिभाषिक शब्द 'अहिंसा' की व्याख्या है।
- एक ही विषय से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दों के रूप की दृष्टि से सादृश्य हो तो संगत लगता है। जैसे विज्ञान के विषय में 'ऑक्सीडेशन', 'रिडक्शन', 'हायड्रोजिनेशन' आदि शब्दों के अपने विशिष्ट अर्थ तो हैं ही साथ ही इनके रूपों में एक सादृश्य भी है।
- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पारिभाषिक शब्दावली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं– सुनिश्चितता, स्पष्टता, विषय सम्बद्धता, एकार्थकता और एकरूपता।

5.3.3 पारिभाषिक शब्दों के प्रकार

प्रयोग की दृष्टि से पारिभाषिक शब्दों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है :

1. अपूर्ण पारिभाषिक शब्द और
2. पूर्ण पारिभाषिक शब्द।

अपूर्ण पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्द हैं जो विषय विशेष से सम्बद्ध होने पर तो विशेष अर्थ देते हैं, परन्तु उस विशेष विषय क्षेत्र से बाहर जब उनका प्रयोग किया जाता है तो वे अपने पारिभाषिक अर्थ को छोड़ कर सामान्य अर्थ प्रकट करने लगते हैं। जैसे 'माया', 'हंस' आदि शब्द। 'माया' शब्द का प्रयोग यदि आध्यात्मिक जगत में किया जाए तो उसका अर्थ होगा 'भ्रम, अर्थात जो नहीं है उसे दिखाना'। इसी शब्द को अध्यात्म से बाहर प्रयोग करने पर यह किसी बालिका का नाम हो जाएगा। इसी प्रकार 'हंस' शब्द है, संत–काव्य में 'हंस' शब्द का अर्थ आत्मा है, किन्तु इससे बाहर 'हंस' एक पक्षी का नाम है। पूर्ण पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्द हैं जिनका पारिभाषिक शब्द के रूप में ही प्रयोग होता है, सामान्य रूप में नहीं, जैसे 'पूंजी', 'संज्ञा', 'क्रिया विशेषण', 'समाजवाद' आदि।

5.3.4 चुने हुए 150 पारिभाषिक शब्द

हिन्दी	अंग्रेजी
1. पृष्ठांकन	Endorsement
2. ज्ञापन	Memorandum
3. परिपत्र	Circular

4.	राजपत्र	Gazzette
5.	अधिसूचना	Notification
6.	अनुस्मारक	Reminder
7.	रुपांतरण	Transformation
8.	लिप्यंतरण	Transliteration
9.	स्थानांतरण	Transfer
10.	अधिकारी	Officer
11.	अधीनस्थ	Subordinate
12.	स्वाधीन	Independent
13.	आवेदन	Application
14.	पुनरावेदन	Appeal
15.	प्रतिवेदन	Reporting
16.	आवेदक	Applicant
17.	निर्देश	Guide
18.	अनुदेश	Instruction
19.	अध्यादेश	Ordinance
20.	अभिकर्ता	Agent
21.	ऋणकर्ता	Loanee
22.	उधारकर्ता	Borrower
23.	जमाकर्ता	Depositor
24.	अनुमोदनकर्ता	Approved by
25.	प्रस्तुतकर्ता	Presented by
26.	अधिकरण	Agency
27.	प्राधिकरण	Authority/Authorisation
28.	कथन	Statement
29.	प्राक्कथन	Foreword
30.	आकलन	Assessement
31.	लेखाकार	Accountant
32.	नकार	Refusal
33.	प्रक्रिया	Process
34.	ग्रहण	Taking

35.	अधिग्रहण	Acquisition
36.	तथ्य	Fact
37.	वस्तुत:	De facto
38.	तुलनात्मक	Comparative
39.	आतिथ्य	Hospitality
40.	नियत तिथि	Due Date
41.	तिथिवार	Datewise
42.	तदर्थ	Ad hoe
43.	दान	Donation
44.	उपदान	Subsidy
45.	अंशदान	Contribution
46.	अनुदान	Grant
47.	द्विभाषिक	Bilingual
48.	द्विपक्षीय	Bilateral/Bipartite
49.	करारनामा	Agreement
50.	हलफनामा	Affidavit
51.	वसीयतनामा	Will
52.	निवेश	Investment
53.	पूंजी निवेश	Capital investment
54.	नियम	Rule
55.	प्रपत्र	Form
56.	अधिकार पत्र	Authority letter
57.	मांग पत्र	Indent
58.	अनुज्ञा पत्र	Licence
59.	समायोजन	Adjustment
60.	सेवायोजन	Employment
61.	नियोजन	Planning
62.	परियोजना	Project
63.	वाद	Suit/Plaint
64.	प्रतिवाद	Respondent
65.	विवाद	Controversy

66.	विधिक	Legal
67.	कार्यविधि	Procedure
68.	विधिवत	Judicialy
69.	वैधानिक	Statutory
70.	संशोधन	Amendment/Modification
71.	निरीक्षण	Inspection
72.	आरक्षण	Reservation
73.	सेवा–निवृत्ति	Retirement
74.	हस्तलिखित	Manuscript
75.	ज्ञान	Knowledge
	अंग्रेजी	**हिन्दी**
76.	Abandonment	परित्याग
77.	Ability	योग्यता
78.	Abnormal	असामान्य
79.	Abolition	उन्मूलन
80.	Abstract	सार
81.	Absurdity	बेतुका
82.	Academy	अकादमी
83.	Acceptance	स्वीकृति
84.	Accommodation	आवास
85.	Background	पृष्ठभूमि
86.	Bail	जमानत
87.	Banking	बैंकिंग
88.	Bace	आधार
89.	Basic	मूल
90.	Belief	विश्वास
91.	Cabinet	मंत्रिमंडल
92.	Candidate	उम्मीदवार
93.	Cantonment	छावनी
94.	Casual	अनियत
95.	Casual leave	आकस्मिक छुट्टी

96.	Censure	निंदा
97.	Citizen	नागरिक
98.	Dais	मंच
99.	Data	आंकड़ा
100.	Deal	सौदा
101.	Debt	ऋण
102.	Decision	निर्णय
103.	Decorum	शिष्टता
104.	Earned	अर्जित
105.	Economic	आर्थिक
106.	Editorial	संपादकीय
107.	Efficiency	दक्षता
108.	Election	निर्वाचन
109.	Embezzlement	गबन
110.	Enclosure	अनुलग्नक
111.	Epidemic	महामारी
112.	Excise	आबकारी
113.	Felicitate	बधाई देना
114.	Fellowship	अध्येतावृत्ति
115.	Finance	वित्त
116.	Forgery	जालसाजी
117.	Formality	औपचारिक
118.	Fundamental	मूलभूत
119.	Gazette	राजपत्र
120.	Gazettted officer	राजपत्रित अधिकारी
121.	Genuine	प्रामाणिक
122.	Governance	शासन
123.	Graduate	स्नातक
124.	Guarantee	प्रत्याभूति
125.	Guardian	अभिभावक
126.	Handbill	इश्तहार

127.	Handbook	पुस्तिका
128.	Hand-over	सौंपना
129.	Hearing	सुनवाई
130.	Hereditary	आनुवंशिक
131.	Honorary	मानद
132.	Hostile	शत्रुतापूर्ण
133.	Identity	पहचान
134.	Illiteracy	निरक्षरता
135.	Impact	प्रभाव
136.	Immoral	अनैतिक
137.	Import	आयात
138.	Increment	वेतनवृद्धि
139.	Infection	संक्रमण
140.	Inquiry	पूछताछ
141.	Kidnapping	अपहरण
142.	Key-board	कुंजी–पटल
143.	Keen	उत्साही
144.	Knowingly	जानबूझकर
145.	Mail	डाक
146.	Margin	हाशिया
147.	Nationalism	राष्ट्रीयता
148.	National symbol	राष्ट्रीय प्रतीक
149.	Occupation	व्यवसाय
150.	Recovery	वसूली

5.4 सारांश

अनुवाद भाषा की एक रचनात्मक प्रक्रिया है। आज जिस तरह से सारी दुनिया एक दूसरे के समीप आ रही है उसमें अनुवाद का महत्व बढ़ता जा रहा है। एक दूसरे की संस्कृति, इतिहास, भाषा और साहित्य से परिचित होने के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद तो दुनिया के कई सारे देश एक दूसरे के साथ बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध बना रहे हैं, जिसके लिए एक दूसरे की भाषा

सांस्कृतिक परम्पराओं आदि को जानने–समझने के लिए भी अनुवाद ही सबसे सशक्त माध्यम बन कर उभरा है।

अनुवाद एक उद्देश्यपूर्ण सांस्कृतिक कर्म है। जिसमें 'मूल–भाषा' या 'स्रोत–भाषा' में निहित अर्थ, विचार और शैली को यथा सम्भव सहज और सरल रूप में लक्ष्य–भाषा की प्रकृति व शैली के अनुसार परिवर्तित किया जाता है।

वर्तमान में वैश्विक स्तर पर अनुवाद की आवश्यकता बहुत बढ़ गयी है। इसलिए अनुवाद का क्षेत्र भी विस्तृत होता जा रहा है। आज लगभग प्रत्येक क्षेत्र में जानकारियों, सूचनाओं के आदान–प्रदान, शिक्षा और ज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए अनुवाद का प्रयोग हो रहा है।

वैश्विक स्तर पर एक देश दूसरे देश से अपने आर्थिक, व्यावसायिक एवं कूटनीतिक सम्बन्धों को मजबूत करने के लिए दूतावासों की स्थापना एवं राजदूतों की नियुक्ति करते हैं। इन दूतावासों में सारे काम–काज अनुवाद के ही माध्यम से होते हैं। अनुवाद के द्वारा ही एक देश अपने विचारों एवं नीतियों को दूसरे देश के समक्ष उसकी भाषा में रखता है। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग में भी अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है।

पाठधर्मी आयाम के अनुसार होने वाले अनुवाद में स्रोत–भाषा का मूल पाठ ही मुख्य होता है। इसका प्रयोग तकनीकी एवं सूचना प्रधान तथ्यों के अनुवाद में किया जाता है। प्रभावधर्मी आयाम के अन्तर्गत होने वाले अनुवाद में स्रोत–भाषा के पाठ के उस प्रभाव को दिखाया जाता है, जो पाठकों पर पड़ता है। इस तरह का अनुवाद कविता, उपन्यास, कहानी जैसी विधाओं में किया जाता है।

अनुवाद एक जटिल प्रक्रिया है। क्योंकि एक भाषा के पाठ में निहित अर्थ एवं विचार को दूसरी भाषा के पाठ में प्रामाणिक रूप से व्यक्त करना होता है। चूंकि भाषाओं की प्रकृति, संरचना, संस्कृति आदि में भिन्नता होती है, इसलिए एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद के लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं का ज्ञाता, विशेषज्ञ होना चाहिए। साथ ही उसे दोनों भाषाओं की प्रकृति, संरचना, व्याकरण, शब्द संपदा, संस्कृति से पूर्ण परिचित होना चाहिए। इसी तरह अच्छे अनुवाद से भी कुछ अपेक्षाएं होती हैं, उन्हीं को अनुवाद के गुण भी कहते हैं।

अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय सबसे पहले मूल पाठ के भाव को समझना चाहिए। तदुपरान्त कठिन शब्दावलियों की सूची तैयार कर सन्दर्भानुसार लक्ष्य भाषा में उसके पर्याय चुनना चाहिए। उल्लेखनीय बात यह है कि चुने गये पर्याय विषय के सन्दर्भानुसार हो, जिससे कि मूल पाठ के अर्थ–सन्दर्भ की रक्षा हो सके। अनुवाद में मूल–पाठ के विचार को यथा संभव लक्ष्य–भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाना चाहिए। अनुवाद की प्रकृति मूल–पाठ के विषय से संबंधित होती है। साहित्य, कार्यालय की भाषा और विधि से संबंधित विषयों के अनुवाद के लिए उन विषयों की ही शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के तीन प्रमुख तत्व हैं। पहला–पारिभाषिक शब्दावली, दूसरा–अनुवाद और तीसरा–भाषिक संरचना। भाषा–बोध और सम्प्रेषण की प्रक्रिया में इन

तीनों तत्वों का विशेष महत्व है। किन्तु पारिभाषिक शब्दावली की उपयोगिता एक समान भाषा–व्यवस्था के लिए अपरिहार्य है। इसीलिए भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही भाषा वैज्ञानिकों, लेखकों ने संस्थानिक स्तर पर पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए कोशिश करना आरम्भ कर दिया था। स्वतंत्रता के पूर्व भी इस विषय पर विचार हुए थे। पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता के पीछे विभिन्न भाषाओं में होने वाले वैज्ञानिक आविष्कार, दार्शनिक अवधारणों और आधुनिक संकल्पनाओं आदि को अपनी भाषा में लाना था। जिसके लिए उपयुक्त शब्दावली की आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग ज्ञान के किसी भी क्षेत्र के लिए विशिष्ट किन्तु निश्चित अर्थ में किया जा सकता है। पारिभाषिक शब्द परिभाषित होते हैं। पारिभाषिक शब्दावली को समझने से पहले हमें शब्द के बारे में जान लेना चाहिए।

पारिभाषिक शब्द को अंग्रेजी में 'टेक्निकल टर्म' (Technical Term) कहा जाता है। सामान्य अर्थ में विभिन्न शास्त्रों और वैज्ञानिक विषयों में एक सुनिश्चित अर्थ अभिव्यक्त करने वाले और उसी में संदर्भ परिभाषित किये जा सकने वाले शब्द 'पारिभाषिक शब्द' कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में ज्ञान की किसी विशेष शाखा से सम्बन्ध रखनेवाली विशिष्ट शब्दावली 'पारिभाषिक शब्दावली' कहलाती है।

पारिभाषिक शब्दावली की महत्ता ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ती ही जा रही है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ–साथ दैनिक जीवन में नई–नई वस्तुएं, विचार, भावनाएं तथा धारणाओं का तेजी से प्रयोग हो रहा है। जिसको पारम्परिक भाषा और उसकी शब्दावली में व्यक्त करना कठिन होता जाता है। इसलिए ज्ञान–विशेष के किसी भी क्षेत्र में हो रहे विकास और परिवर्तन के कारण नई शब्दावली का निर्माण आवश्यक हो जाता है।

किसी भी भाषा में समुचित पारिभाषिक शब्दावली की विद्यमानता उस भाषाभाषी वर्ग के बौद्धिक उत्कर्ष एवं सम्पन्नता की परिचायक होती है और उसका अभाव बौद्धिक दरिद्रता का। सचमुच समर्थ राष्ट्र की भाषा में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण तथा विकास की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहनी चाहिए।' अतः यह स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्दावली के बिना कोई भाषा स्वयं को आधुनिक प्रगति के अनुकूल तथा समृद्ध नहीं बना सकती।

5.5 मुख्य शब्दावली

- **दायरा** : क्षेत्र, सीमा।
- **परिवर्तित** : बदला हुआ।
- **दोभाषिया** : अनुवादक।
- **आशय** : अर्थ।
- **समकक्ष** : समान।
- **निर्वाह** : गुजर–बसर।
- **ध्यातव्य** : ध्यान रखने योग्य
- **शोध** : खोज।

- **प्रतीक** : चिह्न।
- **सटीक** : टीका सहित।
- **लक्ष्य** : उद्देश्य।
- **खरा** : सच्चा।
- **परजीवी** : दूसरे पर आश्रित।

5.6 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. दो भागों में– (क) भाषान्तरण संदर्भ (सीमित स्वरूप), (ख) प्रतीकान्तरण संदर्भ (व्यापक स्वरूप)
2. वार्तानुवाद
3. (क) सही, (ख) गलत
4. दो वर्गों में– अपूर्ण और पूर्ण पारिभाषिक शब्द
5. तीन– पारिभाषिक शब्दावली, अनुवाद एवं भाषिक संरचना
6. (क) सही, (ख) गलत

5.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुवाद की क्या परिभाषा है? स्पष्ट कीजिए।
2. अनुवाद की प्रक्रिया को समझाइए।
3. पारिभाषिक शब्दावली को परिभाषित कीजिए।
4. अनुवाद के गुणों का वर्णन कीजिए।
5. पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएं बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुवाद के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अनुवाद की व्याख्या कीजिए।
2. अनुवाद के प्रकारों एवं क्षेत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. अनुवाद एवं पारिभाषिक शब्दावली का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
4. पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ स्पष्ट करते हुए पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएं बताइए।
5. पारिभाषिक शब्दों को प्रयोग की दृष्टि से किन वर्गों में बांटा जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।

5.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. भोलानाथ तिवारी, *अनुवाद विज्ञान।*
- छबिल कुमार मेहेर, *अनुवाद : प्रक्रिया एवं प्रयोग।*
- विनोद गोदरे, *प्रयोजनमूलक हिन्दी,* पेपरबैक संस्करण।
- विनोद कुमार प्रसाद, *भाषा और प्रौद्योगिकी,* वाणी, नई दिल्ली।
- प्रेमचंद पातंजलि, *व्यावसायिक हिन्दी,* वाणी, नई दिल्ली।
- प्रेमचंद पातंजलि, *आधुनिक विज्ञापन,* नई दिल्ली।
- रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, *प्रयोजनमूलक हिन्दी,* केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
- दंगल झाल्टे, *प्रयोजनामूलक हिन्दी, सिद्धांत और प्रयोग,* वाणी, नई दिल्ली।

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in